हमारा अरुणाचल प्रदेश



प्यारे बच्चो!

यदि कोई आपको अनुचित ढंग से स्पर्श करे और यह स्पर्श आपको अच्छा न लगे तो, आप चुप न रहें। आप

1. स्वयं को इसका दोष न दें;
2. इस बारे में किसी ऐसे व्यक्ति को बताएँ जिस पर आप भरोसा करते हो;
3. आप **पॉक्सो ई.बॉक्स** के माध्यम से राष्ट्रीय बाल अधिकार संरक्षण आयोग को भी इस बारे में सूचित कर सकते हैं।

जब आपको कोई अनुचित ढंग से स्पर्श करता है तो आपको बुरा लग सकता है, आप दुविधाग्रस्त और असहाय अनुभव कर सकते हैं
आपको "बुरा" अनुभव करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आपकी गलती नहीं है



पॉक्सो ई.बॉक्स NCPCR@gov.in पर उपलब्ध है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

यदि आपकी आयु 18 वर्ष से कम है और आप मुसीबत में हैं अथवा दुविधाग्रस्त हैं अथवा आपके साथ दुर्व्यवहार किया गया है अथवा संकट में हैं अथवा किसी ऐसे बच्चे को जानते हैं...

1098 पर कॉल करें...क्योंकि कुछ अच्छे नंबर जीवन बदल देते हैं।



चाइल्ड लाइन
1098
रात-दिन

चाइल्ड लाइन 1098 - विपत्ति में बच्चों के लिए 24 घंटे नि:शुल्क राष्ट्रीय आपातकालीन फ़ोन सेवा, महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के सहयोग से चाइल्ड लाइन इंडिया फ़ाउंडेशन की पहल है।

नए समाज की ओर
Towards a new dawn

स्वच्छ भारत
एक कदम स्वच्छता की ओर

पढ़ें और सीखें योजना

हमारा अरुणाचल

दीन दयाल त्रिवेदी

विभागीय सहयोग
डॉ. सुरेश पांडेय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
अगस्त 1990 भाद्रपद 1911

पुनर्मुद्रण
जनवरी 2020 माघ 1941
मई 2020 ज्येष्ठ 1942

PD 10T RPS

© राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 1990

₹ 35.00

80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016 तथा सरस्वती आर्ट प्रिंटर्स, ई–25, सेक्टर–4, बवाना इंडस्ट्रियल एरिया, दिल्ली– 110 039 द्वारा मुद्रित।

ISBN 978-93-5292-168-3

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमित के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलैक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रचारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशन की पूर्व अनुमित के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फ़ोन : 011-26562708

108ए 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फ़ोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फ़ोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट– धनकल बस स्टॉप पिनहटी
कोलकाता 700 114 फ़ोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फ़ोन : 0361-2676869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग	:	*अनुप कुमार राजपूत*
मुख्य संपादक	:	*श्वेता उप्पल*
मुख्य उत्पादन अधिकारी	:	*अरुण चितकारा*
मुख्य व्यापार प्रबंधक (प्रभारी)	:	*विपिन दिवान*
संपादक	:	*आशीष सिन्हा*
उत्पादन सहायक	:	*राजेश पिप्पल*

आवरण एवं सज्जाकार
सुभाष चन्द्र

प्राक्कथन

विद्यालय शिक्षा के सभी स्तरों के लिए अच्छे शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रमों ओर पाठ्यपुस्तकों के निर्माण की दिशा में हमारी परिषद् पिछले पच्चीस वर्षों से कार्य कर रही है। हमारे कार्य का प्रभाव भारत के सभी राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पड़ा है और इस पर परिषद् के कार्यकर्ता संतोष का अनुभव कर सकते हैं।

किन्तु हमने देखा है कि अच्छे पाठ्यक्रम और अच्छी पाठ्यपुस्तकों के बावजूद हमारे विद्यार्थियों की रुचि स्वतः पढ़ने की ओर अधिक नहीं बढ़ती। इसका एक मुख्य कारण अवश्य ही हमारी दूषित परीक्षा प्रणाली है जिसमें पाठ्यपुस्तकों में दिए गए ज्ञान की ही परीक्षा ली जाती है। इस कारण बहुत ही कम विद्यालयों में कोर्स के बाहर की पुस्तकों को पढ़ने के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है, लेकिन अतिरिक्त पठन में बच्चों की रुचि न होने का एक बड़ा कारण यह भी है कि विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए कम मूल्य की अच्छी पुस्तकें पर्याप्त संख्या में उपलब्ध भी नहीं हैं। यद्यपि पिछले कुछ वर्षों में इस कमी को पूरा करने के लिए कुछ काम प्रारंभ हुआ है पर वह बहुत ही नाकाफी है।

इस दृष्टि से परिषद् ने बच्चों के लिए पुस्तक लेखन की दिशा में एक महत्वाकांक्षी योजना प्रारंभ की है। इसके अंतर्गत "पढ़ें और सीखें" शीर्षक से एक पुस्तकमाला तैयार करने का विचार है जिसमें विभिन्न आयुवर्ग के बच्चों के लिए सरल भाषा और रोचक शैली में अनेक विषयों पर बड़ी संख्या में पुस्तकें तैयार की जाएंगी। हम आशा करते हैं कि हम निम्नलिखित विषयों पर हिन्दी में 200 पुस्तकें प्रकाशित कर सकेंगे।

(क) शिशुओं के लिए पुस्तकें

(ख) कथा साहित्य

(ग) जीवनियाँ

(घ) देश-विदेश परिचय

(ङ) सास्कृतिक विषय

(च) वैज्ञानिक विषय

(छ) सामाजिक विज्ञान के विषय

हम पुस्तकों के निर्माण में लेखकों, अनुभवी अध्यापकों और योग्य कलाकारों का सहयोग ले रहे हैं। प्रत्येक पुस्तक के प्रारूप पर भाषा, शैली और विषय-विवेचन की दृष्टि से सामूहिक विचार करके इसे अंतिम रूप दिया जाएगा।

परिषद् इस माला की पस्तकों को लागत-मूल्य पर ही प्रकाशित कर रही है ताकि वे अपने देश के सभी कोनों में पहुँच सकें। भविष्य में इन पुस्तकों का अन्य भारतीय भाषाओं में अनुवाद कराने की भी योजना है।

हम आशा करते हैं कि शिक्षाक्रम, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के क्षेत्र में किए गए कार्य की भाँति ही परिषद् की इस योजना का भी व्यापक स्वागत होगा।

प्रस्तुत पुस्तक के लेखन के लिए श्री दीन दयाल त्रिवेदी ने हमारा निमंत्रण स्वीकार किया जिसके लिए हम उनके अत्यंत आभारी हैं। जिन-जिन विद्वानों, अध्यापकों और कलाकारों से इस पुस्तक को अंतिम रूप देने में हमें सहयोग मिला है उनके प्रति मैं कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

परिषद् में यह योजना प्रोफ़ेसर अनिल विद्यालंकार के मार्ग-दर्शन में चल रही है। उनके सहयोगियों में श्रीमती संयुक्ता लूदरा, डॉ. रामजन्म शर्मा, डॉ. सुरेश पाण्डेय, डॉ. हीरालाल बाछोतिया और डॉ. अनिरुद्ध राय सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। विज्ञान की पुस्तकों के लेखन का कार्य हमारे विज्ञान एवं गणित शिक्षा विभाग के डॉ. रामदुलार शुक्ल देख रहे हैं। योजना के संचालन में डॉ. बाछोतिया विशेष रूप से सक्रिय रहे हैं। मैं अपने सभी सहयोगियों को हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूँ।

इस माला की पुस्तकों पर बच्चों, अध्यापकों और बच्चों के माता-पिता की प्रतिक्रिया का हम स्वागत करेंगे ताकि उनसे इन पुस्तकों को और भी उपयोगी बनाने में हमें सहयोग मिल सके।

पी.एल. मल्होत्रा

निदेशक

नयी दिल्ली

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

भूमिका

अरुणाचल प्रदेश भारत के उत्तर-पूर्व में स्थित एक राज्य है। यह पूर्वी हिमालय के दक्षिणी भाग में है। इस प्रदेश के बारे में ऐतिहासिक और भौगोलिक स्थिति की जानकारी बहुत सीमित है। यहाँ रहनेवाली जनजातियों की जीवन धारा और संस्कृति बड़ी विचित्र और मोहक हैं। ऊँचे-ऊँचे पहाड़, बर्फ से ढकी पहाड़ों की चोटियाँ, गहरी खाइयाँ, घने जंगल, रंगबिरंगे पक्षी, मन को लुभाने वाले दुर्लभ आरकिड, बिरले पशु और बड़ी-बड़ी नदियाँ अरुणाचल को सजाती और सँवारती रहती हैं। इसका क्षेत्रफल 83,578 वर्ग किलोमीटर और जनसंख्या 6,28,500 है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह भारत के उत्तर-पुर्वी क्षेत्र का सबसे बड़ा प्रदेश है। एक वर्ग किलोमीटर में केवल सात आदमी रहते हैं। निवासियों का इतना कम औसत भारत के किसी अन्य प्रदेश में नहीं है।

तिब्बत, भूटान और बर्मा से अरुणाचल प्रदेश की सीमाएँ लगती हैं। इसकी अंतर्राष्ट्रीय सीमा 1,628 मील की है। इस दृष्टि से यह राज्य बहुत ही महत्वपूर्ण राज्य बन गया है। मैकमोहन लाइन तिब्बत और भारत की विभाजक रेखा है।

अरुणाचल आरकिड प्रेमियों का स्वर्ग है। यहाँ सैकड़ों तरह के सुंदर आरकिड मिलते हैं। टकिन एक खास तरह का दुर्लभ जानवर है। इस जानवर के नर और मादा के सींग भैंस की तरह होते हैं। सियांग के उत्तरी भाग में हम टकिन को देख सकते हैं। यह जानवर यहाँ की अमूल्य निधि है।

अरुणाचल में कई जन-जातियाँ हैं। मोन्पा, शेरडुकपेन, आका, खोवा, मिजी एवं लिस्पा-चुग्पा बौद्ध धर्म को मानते हैं। ये लोग पूर्वी-पश्चिमी कामेंग व तवांग में रहते हैं। लोहित जिले के खामती व सिंगफो एवं सियांग जिले के मेम्बा व खांबा भी बौद्ध धर्म को मानते हैं। अरुणाचल में बौद्ध धर्म को मानने वाली जनजातियों की एक सांस्कृतिक इकाई है। यहाँ साठ से अधिक जुबानें प्रचलित हैं—जिनमें से केवल मोन्पा और खामती भाषा की अपनी-अपनी लिपियाँ हैं।

ऊपरी और निचले सबांसिरी जिलों में निशि, हिल-मीरी, आपातानी, सोलुंग, राऊ, रिशी-माशी, निदुमोरा, चिकुम दुई एवं डा लोग रहते हैं। दापोरिजो और जीरो इन जिलों के मुख्यालय हैं। आपातानी बड़े परिश्रमी और प्रगतिशील होते हैं।

इस प्रदेश में आदी लोग बहुसंख्यक हैं। आदी जनजाति में गालोंग, पादाम, मिन्योंग, सियोंग, पासी, पंगी, बोरी, आशिंग, टंगम, रामो, पिलिवो व बोकार आदि उपवर्ग हैं। आदी लोग बड़ी तेजी से जीवन के हर क्षेत्र में आगे बढ़ रहे हैं।

लोहित और दिवांग वैली में मिशमी, खामती एवं सिंगफो लोग रहते हैं। तिरप जिले में नौक्ते, वांचू और तांग्सा लोग रहते हैं।

जैसा कि कहा जा चुका है, अरुणाचल में 60 से अधिक बोलियाँ बोली जाती हैं। इस भाषाई विविधता में भी एकता के दर्शन होते हैं। आजादी के बाद से यहाँ विकास में बड़ी तेजी आई है। आजादी के समय यहाँ एक प्रतिशत लोग भी शिक्षित नहीं थे। सन् 1981 की जनगणना के अनुसार बीस प्रतिशत से अधिक लोग शिक्षित हो गए हैं। अगले दशक में शिक्षा का प्रतिशत अखिल भारतीय प्रतिशत के समानांतर होने की पूर्ण संभावना है।

अनिनी दिवांग वैली का मुख्यालय है। यहाँ जाने के लिए अब भी हवाई जहाज का सहारा लेना पड़ता है। दुर्गम पहाड़ों में सड़क बनाना एक मुश्किल काम है। आजादी के समय यह लगता था कि इस प्रदेश में सड़कें बनाना एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। आज तवांग, बमदीला, सेप्पा, जीरो, दापोरिजो, अलांग, यिंगकियांग, पासीघाट, तेजू, रोइंग, खोंसा, चांगलांग आदि स्थानों पर जाने के लिए पक्की और चौड़ी सड़कें हैं। कल तक जो सपना था, वह आज साकार हो गया है।

ईटानगर अरुणाचल की राजधानी है। योजनाबद्ध तरीके से इस राजधानी का विकास हो रहा है। असम के नार्थ लखीमपुर में बने हवाई-अड्डे से ईटानगर पहुँचा जा सकता है। लखीमपुर का रेलवे स्टेशन नार्थ लखीमपुर से केवल 40 किलोमीटर दूर है। छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बसा ईटानगर बहुत ही सुंदर है। अरुणाचल के सभी भागों से ईटानगर सुविधाजनक तरीके से पहुँचा जा सकता है। ईटानगर में एक विश्वविद्यालय की भी स्थापना हो चुकी है। विज्ञान और टेक्नोलोजी को बढ़ावा देने के लिए बने नार्थ इस्टर्न रीजनल इंस्टीटयूट ऑफ साइंस एंड टेक्नोलोजी, जिसे 'नैरिस्ट' भी कहा जाता है, यहीं है।

अरुणाचल में शिक्षा की नई राष्ट्रीय नीति अपनाई गई है। यहाँ के सैकेंडरी और हायर सैकेंडरी स्कूलों का सीधा संपर्क सेंट्रल बोर्ड ऑफ सैकेंडरी एजुकेशन, नई दिल्ली से है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् नई दिल्ली की पुस्तकें यहाँ के स्कूलों में पढ़ाई जाती हैं। यहाँ के स्कूलों के लिए हिंदी और अंग्रेजी की पुस्तकें अरुणाचल की पृष्ठभूमि में परिषद् द्वारा लिखी जा रही हैं। यह एक बड़ी उपलब्धि है।

इस लघु आकार की पुस्तक में अरुणाचल की कुछ जातियों की सांस्कृतिक झाँकियाँ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। इस छोटे से आकार की पुस्तक में नौक्ते, वांचू, मिशमी, आदी, आपातानी, मोन्पा टगिन, शेरडुकपेन जनजातियों पर लिखना ही संभव हो सका है। अरुणाचल की जनजातियाँ खेती पर निर्भर रहती हैं। अरुणाचल के खंडहरों में छिटकी हुई भारत की सांस्कृतिक कड़ियाँ यहाँ के इतिहास पर प्रकाश डालती हैं। इनका वर्णन अलग से किया गया है।

अरुणाचल में कई त्योहार मनाए जाते हैं। इस पुस्तक में लोसर, ड्री, न्योकुम, बोरीबुट, मोपिन, सोलुंग, रेह, सांगकेन, तामलाद, लोकू, मोल, ओजिमेले आदि त्योहारों पर ही प्रकाश डाला गया है। खेती पर आधारित इन त्योहारों में यहाँ के निवासियों के सामाजिक जीवन की प्रतिच्छाया दिखाई देती है। इन त्योहारों में इन लोगों की समृद्ध संस्कति का असली रूप झलकता है।

अरुणाचल की ऐतिहासिक और प्रशासनिक पृष्ठभूमि पर भी प्रकाश डाला गया है। अरुणाचल में हुई चतुर्दिक प्रगति को "आज का अरुणाचल" शीर्षक लेख में समाहित किया गया है। इस अध्याय में शिक्षा, स्वास्थ्य, कृषि, सहकारिता और यातायात के क्षेत्र में हुई उन्नति का भी उल्लेख किया गया है। अरुणाचल बड़ी तेजी से प्रगति के पथ पर आगे बढ़ रहा है। अरुणाचल की प्रगति में यहाँ के कुशल प्रशासकों का बड़ा योगदान रहा है।

परिषद् की "पढ़ें और सीखें" परियोजना के अंतर्गत लिखी गई इस पुस्तक में मैंने अपने उन सभी अनुभवों को वाणी देने का प्रयास किया है जो मुझे इस मनोरम प्रदेश के अपने तीस वर्षों के सेवाकाल में प्राप्त हुए हैं। विश्वास है, इस पुस्तक को हमारे विद्यार्थी-पाठक बड़े चाव से पढ़ेंगे और भारत के इस दूर-दराज स्थित प्रदेश के जनजीवन और अनेकविध जन-संस्कृति के बारे में नवीन जानकारियाँ प्राप्त करेंगे।

अंत में, मैं सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के प्रो. अनिल विद्यालंकार (अवकाश प्राप्त) के प्रति आभार प्रदर्शित करना चाहूँगा जिनकी प्रेरणा से यह पुस्तक लिखी जा सकी है। कतिपय कार्यगोष्ठियों में इस पुस्तक का वाचन करके इसमें परिवर्तन-परिवर्धन करने के लिए मैं सभी विद्वानों का और विशेषतः डॉ. सुरेश पाण्डेय का आभारी हूँ।

— दीन दयाल त्रिवेदी



विषय-सूची

	प्राक्कथन	*iii*
	भूमिका	*v*
1.	भारतीय संस्कृति की छिटकी कड़ियाँ	1
2.	नोक्ते और उनके मुखिया	7
3.	तिरप जिले के वांचू	13
4.	लोहित और दिबांग के मिशमी	20
5.	अरुणाचल के "आदी"	25
6.	आपातानी और उनका वैभव	32
7.	साहसिक जीवन के धनी टगीन	37
8.	नृत्य-प्रेमी शेरडुकपेन	42
9.	मोन्पा : निचले प्रदेश के रहने वाले	47
10.	अरुणाचल में कृषि व्यवस्था	54
11.	अरुणाचल के त्योहार	58
12.	नेफा से अरुणाचल तक	69
13.	आज का अरुणाचल प्रदेश	72



मिल-जुल कर स्कूल में जाएँ, साथ पढ़ें और
साथ में खाएँ। रंग-बिरंगी प्यारी दुनिया,
साथ मिलकर इसे सजाएँ।

1

भारतीय संस्कृति की छिटकी कड़ियाँ

शताब्दियों से भारत की उत्तरी-पूर्वी सीमा पर रहने वालों को इतिहासकारों ने मंगोलाइड, पेलिओ मंगोलाइड और प्रोटोमंगोलाइड नामों से पुकारा है, किन्तु कुछ अन्य विद्वानों ने इन्हें इण्डोमंगोलाइड भी कहा है जो अधिक उचित है। अरुणाचल प्रदेश के ये निवासी भारतीय जनजीवन और संस्कृति से सदियों से जुड़े रहे हैं और भारतीय संस्कृति के विकास में इनका योगदान बड़ा महत्वपूर्ण रहा है।

जिस जमाने में आर्यों ने उत्तरी-पश्चिमी सीमा से भारत में प्रवेश किया, उसी समय इन लोगों ने भी उत्तर-पूर्व से भारत में प्रवेश किया था। फिर हिमालय की ढलानों पर ये लोग धीरे-धीरे स्थाई रूप से बसते गए।

महाभारत में किरातों का उल्लेख मिलता है। प्रांगज्योतिष (वर्तमान गुवाहाटी) के राजा ने अपने बहादुर किरात सैनिकों के साथ दुर्योधन की सहायता की थी। डॉ. बानीकांत काकोती ने अपनी पुस्तक "मदर गॉडेस कामाख्या" में कहा है कि प्रांगज्योतिष (गुवाहाटी) की सीमा किरातों के इन इलाकों से लगती थी। सुप्रसिद्ध भाषाविद् डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी ने अपनी पुस्तक "किरात संस्कृति" में किरातों की स्थिति को और स्पष्ट किया है। उन्होंने लिखा है कि यजुर्वेद की रचना के समय से ही उत्तर-पूर्व का पहाड़ी अंचल किरातों का घर था। डॉ. चटर्जी ने स्पष्ट किया है कि जब ईसा से 500 वर्ष पूर्व से 400 वर्ष बाद तक के समय में रामायण और महाभारत की घटनाओं की रूपरेखा बन रही थी, तभी से किरात भारत के उत्तर-पूर्व के हिमालय अंचल में बसे हुए हैं।

वर्तमान ब्रह्मपुत्र नदी को उन दिनों "लोहित्य" नाम से जाना जाता था। आज भी अरुणाचल का लोहित जिला और ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी लोहित, लोहित्य नाम की याद को तरोताजा बनाए हुए है। लोहित जिले में अधिकांशतः मिशमी लोग ही रहते हैं। यही पुराण-प्रसिद्ध क्षेत्र आज अरुणाचल के नाम से भारतीय संस्कृति की धरोहर है।

असम के वैष्णव संत वामसी गोपाल देव की जीवनी में इस बात का उल्लेख है कि जब वे गुफाओं में साधनालीन रहते थे तब मिशमी लोग ही उन्हें भोजन दे आया करते थे।

"योगिनी तंत्र" के उल्लेख के अनुसार उत्तर-पूर्व में उस समय "कोल्वपीठ" की स्थापना हो चुकी थी। इस पीठ के अंतर्गत बनाए गए नियम ही यहाँ की जनजाति में चलते थे। अरुणाचल के प्रमुख भग्नावशेषों में ईटा, मालिनी थान, ताम्रेश्वरी, भीष्मकनगर, बृह्मकुण्ड एवं रोइंग बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। अरुणाचल की बिखरी सांस्कृतिक कड़ियों के दर्शन हमें इन्हीं स्थानों पर होते हैं।

नगर खण्डहरों का

अरुणाचल के लोअर सुबाँसिरी जिले में यहाँ की राजधानी "ईटानगर" स्थित है। इस स्थान पर कई किलोमीटर लंबी ईंटों की दीवाल और दरवाजों के मिलने के कारण ही इसे संभवतः "ईटानगर" नाम दिया गया है। यह एक आश्चर्य की ही बात है कि अरुणाचल में इमारतों आदि के बनाने में ईंटों का प्रयोग न होते हुए भी इस नगर के खण्डहरों में ईंटों की दीवाल और दरवाजे मिले हैं। यह इसकी प्राचीन सभ्यता और सम्पन्नता का परिचायक है।

इतिहासकारों ने ईटानगर का संबंध जितारी राजा रामचन्द्र की राजधानी मायापुर से जोड़ा है। ग्यारहवीं सदी में राजा रामचन्द्र का राज्य दर-दर तक फैला हआ था। मालुकपुंग से माजुली तक फैले उसके राज्य की राजधानी पहले रतनपुर थी। चूँकि बाद में उसने मायापुर में जाकर अपनी राजधानी बनाई थी, अतः "निशी" जनजाति के लोग उसे शरणार्थी राजा कहते थे। डॉ. काकोती के अनुसार राजा रामचन्द्र वास्तव में राजा कलिता का वंशज था।

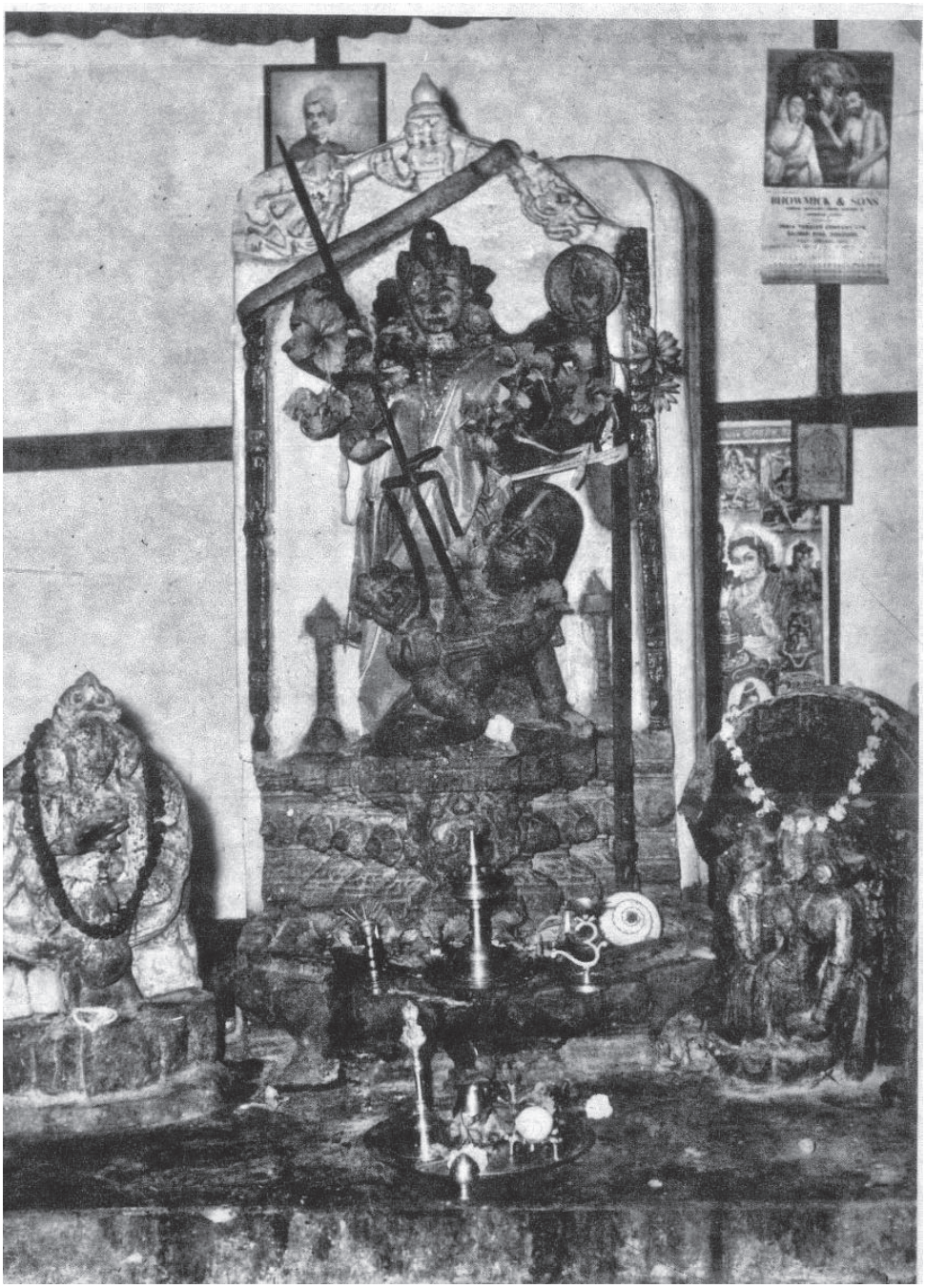
मालिनी थान

पश्चिमी सियांग जिले में लीकावाली के भग्नावशेष बड़े महत्वपूर्ण हैं। खुदाई में एक विशाल मंदिर के अवशेष मिले हैं। इस मंदिर के पत्थरों के खंभों पर कमल और देवी-देवताओं की मूर्तियों की खुदाई प्राप्त हई है जो अधिकतर खण्डित अवस्था में हैं।

मालिनी थान इसी अंचल में एक महत्वपूर्ण स्थान है। इस स्थान पर देवी दुर्गा की एक दशभुजा मूर्ति मिली है। इस मुर्ति और स्थान के नामकरण के पीछे यहाँ के निवासियों में कई मधुर कथाएँ और पुरानी गाथाएँ प्रचलित हैं। इन गाथाओं के अनुसार जब कृष्ण राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी को विवाह कर ले जा रहे थे तब देवी पार्वती ने भाँति-भाँति के सुंदर फलों की माला बनाकर इसी स्थान पर उनका स्वागत किया था। फूलों की सराहना करते हुए कृष्ण ने उन्हें "हे मालिनी!" कहकर संबोधित किया था। कहते हैं, तभी से इस स्थान का नाम मालिनी थान पड़ गया।

ताम्रेश्वरी

देवलपानी के भग्नावशेष आज भी अरुणाचल की गौरव गाथा गा रहे हैं। इन भग्नावशेषों में प्राप्त ताम्रेश्वरी देवी का मंदिर बहुत प्रसिद्ध है। इसकी छत ताँबे से बनी है। प्राचीन साहित्य और पौराणिक गाथाओं में ताम्रेश्वरी देवी की महिमा का वर्णन मिलता है।



चित्र 1: मालिनी थान-हे मालिनी

डॉ. काकोती ने ताम्रेश्वरी के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए कहा है कि उत्तर-पूर्व में रत्नपीठ, स्वर्णपीठ व हेमपीठ के समान ही एक ह्यताम्र नाम की पीठ भी थी। इस पीठ का योगिनी तंत्र में उल्लेख मिलता है। उनका अनुमान है कि ह्यताम्रपीठ की अधिष्ठात्री देवी ही ताम्रेश्वरी है।

चेतिया राजाओं के समय उत्तर-पूर्वी पहाड़ियों में इस देवी की दूर-दूर तक मान्यता थी। यहाँ की जनजाति के लोग देवी की पूजा करते थे। यहाँ मनुष्यों की बलि भी चढ़ाई जाती थी जिसे बाद में राजा गौरीनाथ सिंह ने बंद कराया था।

कुछ विद्वानों का मत है कि शिव-शक्ति की विचारधारा से उत्तर-पूर्व की जनजातियाँ अधिक प्रभावित थीं। तांत्रिक विद्याओं में शक्ति का बड़ा महत्व है। ताम्रेश्वरी के खण्डहरों में ईंटों से बने एक मंदिर में एक शिवलिंग भी मिला है जो शिवशक्ति में विश्वास रखने का ही एक प्रमाण है। देवी पूजा में माँस-मदिरा का प्रयोग सिद्ध करता है कि किरात शिवशक्ति के अराधक थे और उन पर देवी दुर्गा का व्यापक प्रभाव था।

भीष्मक नगर

अरुणाचल के लोहित जिले में कुछ अन्य खंडहर मिले हैं। इन्हें भीष्मक नगर के खंडहर कहा जाता है जो यहाँ की डिबांग और दिवांग नदियों के मध्य भू-भाग में स्थित हैं। यहाँ



चित्र 2: भीष्मक नगर के खंडहर

प्रचलित गाथाओं के अनुसार यह स्थान पुराना विदर्भ ही है, जहाँ एक समय राजा भीष्मक राज्य करते थे।

भीष्मक नगर के पास रहने वाले ईदूमिशमी आज भी इस बात में विश्वास करते हैं, कि भीष्मक और उसकी सुंदर पुत्री रुक्मिणी मिशमी हिल्स के रहने वाले ही थे। सुंदर मिशमी स्त्रियाँ आज भी स्वयं को सुंदरता में रुक्मिणी से जोड़ती हैं।

सन् 1967 में हुई खुदाई में यहाँ लगभग 1,800 वर्ग मीटर क्षेत्र में फैला किलानुमा एक महल मिला है। यहाँ बहने वाली कंडिल नदी आज भी महाभारत में वर्णित राजा भीष्मक की राजधानी "कुंडिल" का संकेत करती है।

ब्रह्मकुण्ड

ब्रह्मकुण्ड लोहित नदी के निचले भाग में स्थित है, जो लोहित जिले का एक प्रसिद्ध स्थान है। पौराणिक गाथा के अनुसार परशुराम ने अपने फर्शे से इस नदी का मार्ग बनाया था। भारत के अनेक श्रद्धालु स्त्री-पुरुष हर साल यहाँ आते हैं। वे इस स्थान को एक तीर्थस्थान के रूप में मानते हैं। ऐसा जान पड़ता है कि वे भारत की बिखरी हुई सांस्कृतिक कड़ियों को जोड़ने ही यहाँ आते हैं। यहाँ की डिगारु, मिशमी आदि जनजातियाँ यात्रियों का मार्गदर्शन करती हैं। इन लोगों को स्वयं भी इस कुंड के प्रति बड़ी श्रद्धा है।

एक पौराणिक गाथा के अनुसार एक बार महर्षि वशिष्ठ संध्याचल पर भगवान शिव की अराधना में लीन थे। उग्रतारा नामक अप्सरा ने उन्हें छूकर उनकी तपस्या भंग करनी चाही जिसके परिणामस्वरूप महर्षि वशिष्ठ ने उसे शाप दे दिया। ब्रह्मा ने शाप को पूरा कराने के लिए परशुराम के फर्शा से ब्रह्मपुत्र नदी का अवतरण कराया। ब्रह्मपुत्र ने पृथ्वी पर आते ही प्रलय का दृश्य उपस्थित कर दिया। छोटे-बड़े सभी स्थल जलमग्न हो गए, तभी से यह ब्रह्मकुण्ड बन गया है। लोगों का विश्वास है कि इस कुंड में नहाने से सभी तीर्थों में नहाने का फल मिल जाता है।

परशुराम कुण्ड

ब्रह्मकुण्ड के पास ही प्रसिद्ध परशुराम कुण्ड है। मकर संक्रांति के अवसर पर दूर-दूर से श्रद्धालु लोग यहाँ आते हैं। इस कुण्ड के विषय में भी एक पौराणिक कथा है — ऋषि जमदग्नि ने एक दिन अपने पुत्र परशुराम को अपनी माता (ऋषि पत्नी) का सिर काटने का आदेश दे दिया। आज्ञाकारी पुत्र परशुराम ने माता का सिर काट डाला। इस जघन्य हत्या के पाप से उनका फर्शा उनके हाथ से ही चिपका रह गया। पुत्र की आज्ञाकारिता से प्रसन्न पिता जमदग्नि ने उससे दो वरदान माँगने को कहा। परशुराम ने एक वरदान तो माँ के जीवित होने का माँगा और दूसरे वरदान में फर्शे के हाथ से छूटने का उपाय पूछा।

पिता ने उन्हें देश के विभिन्न तीर्थस्थलों का दर्शन करने की सलाह दी। परशुराम ने भारत के सभी तीर्थों के दर्शन किए। अंत में वे यहाँ भी आए। यहाँ उन्होंने फर्शे से ब्रह्मपुत्र को काट कर नदी का प्रवाह मोड़ा और अपने बनाए कुण्ड में स्नान किया। इस प्रकार वे पापमुक्त हुए तथा फर्शा उनके हाथ से छूट कर पानी में विलीन हो गया।

रोइंग के खण्डहर

अरुणाचल के तीर्थस्थलों के रूप में वर्णित उपरोक्त खण्डहरों के अतिरिक्त दिवांग-वैली जिले में रोइंग के खण्डहर भी बहुत ऐतिहासिक महत्व के हैं। रोइंग के पास ईंटों के तालाबों के अवशेष आज भी अपनी कहानी कह रहे हैं।

नहाने के घाट, पक्की सीढ़ियाँ और एक अन्य तालाब का चारों ओर से पक्के परकोटे से घिरा होना तथा चौड़ी-चौड़ी सड़कों के अवशेष मिलना आज भी अपनी प्राचीन वैभवपूर्ण गाथा का मौन गान कर रहे हैं।

यद्यपि इन स्थलों के सही निर्माताओं के विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सका है तथापि एक अनुमान है कि अहम राजाओं के पूर्ववर्ती चेतिया राजाओं ने ही इनका निर्माण कराया था।

संसार की परिवर्तनशीलता और समयचक्र का प्रभाव किसे प्रभावित नहीं करता। बड़ी-बड़ी शानदार इमारतें, सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ अपनी गौरव गाथा कहते-कहते विलीन हो जाती हैं और उनकी याद दिलाते हुए ये अवशेष रह जाते हैं। ये खण्डहर हमें अतीत से जोड़े रहते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के ये खण्डहर भी हमारी प्राचीन गौरवमयी संस्कृति की बिखरी कड़ियों की एक कहानी है, जिसे आज भी राष्ट्रीय एकता के सूत्र की एक मजबूत लड़ी के रूप में याद किया जाता है।

2

नोक्ते और उनके मुखिया

अरुणाचल के तिरप जिले के बीचोंबीच में नोक्ते जाति के लोग रहते हैं। इनका वर्षों से असम के साथ संपर्क रहा है जिसके फलस्वरूप असम के वैष्णव धर्म का भी इन पर प्रभाव पड़ता रहा है। ये लोग आज भी असम के मठों में जाते हैं जिन्हें सत्र कहा जाता है। ये लोग वहाँ के धर्म प्रमुख का, जिन्हें सत्राधिकारी कहा जाता है बड़ा आदर करते हैं। ये लोग आज भी अपने तरीकों से जी रहे हैं और अपनी प्राचीन परंपरा से जुड़े हुए हैं।

इनके घर लकड़ी, बाँस और बेंत के बने होते हैं। यह सभी सामग्री इन्हें अपने यहाँ के जंगलों से ही मिल जाती है। वन-विभाग भी इनके जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति कराने के लिए इन्हें सहयोग देता रहता है।



चित्र 3: नोक्ते लोगों का घर

ये लोग अपने घर लकड़ी के खंभों पर जमीन से कुछ ऊँचे बनाते हैं ताकि नमी और रेंगने वाले कीड़ों से बचे रहें। लकड़ी के बड़े-बड़े खंभों पर उकेर कर डिजाइनें भी बनाते हैं। घर की छतें ढलवाँ होती हैं। घर के सामने एक खुला चबूतरा होता है जो शाम को बैठक के काम आता है। ये लोग इस चबूतरे पर बैठकर दस्तकारी भी करते हैं।

घर का अगला भाग मेहमानों के लिए होता है। घर के पिछले भाग में महिलाएँ रहती हैं। मुखिया का घर अन्य घरों की अपेक्षा बड़ा होता है। नोक्ते जाति के लोगों के अतिरिक्त अरुणाचल प्रदेश की अन्य जातियाँ इतने बड़े घर नहीं बनातीं। नोक्ते बड़े घर बनाने के शौकीन होते हैं और प्रायः अपने घरों में सभी प्रकार के आराम की व्यवस्था रखते हैं।

नोक्ते जाति के लोगों की वेशभूषा बड़ी निराली होती है। इस जाति के पुरुष कमर में बेंत का बेल्ट (कमर पेटी) और सामने लंगोट की तरह लटकता हुआ एक कपड़ा पहनते हैं। पुरुषों की केश सज्जा भी बड़ी आकर्षक होती है। वे सिर के आगे के बाल काट लेते हैं तथा सिर के पिछले भाग में लंबे बालों को समेट कर एक जूड़ा-सा बना लेते हैं जो गर्दन के पिछले भाग पर झूलता रहता है। यदि कोई इन्हें पीछे से देखे तो ये लोग दक्षिण भारत के ब्राह्मणों की भाँति दिखाई पड़ते हैं।

इतना ही नहीं, नोक्ते पुरुष अपने हाथों और पाँवों की सजावट बेंत की चूड़ियों से करते हैं। स्त्रियाँ गले को मोतियों की माला से या मणियों की लड़ियों से भरे रहती हैं। वे घुटनों तक का स्कर्ट पहनती हैं जो प्रायः काले या सफेद रंग का होता है। अब तो वे ब्लाउज भी पहनने लगी हैं। शरीर को गुदवाने का बड़ा शौक होता है इन्हें।

नोक्ते समाज में गाँवभर के अविवाहित युवक-युवतियों के सोने के लिए अलग-अलग घर होते हैं, जिन्हें मोरुंग कहते हैं। यहाँ इनको अपने भावी जीवन की जरूरी शिक्षा अनौपचारिक रूप से मिल जाती है। युवक-युवतियाँ यहाँ परस्पर मिलकर अपना जीवन-साथी चुन लेते हैं। बाद में माता-पिता और समाज की अनुमति से विवाह हो जाता है। इनके समाज में युवक-युवतियों को पर्याप्त स्वतंत्रता रहती है।

एक गर्भवती महिला आठवें महीने तक घर और खेत में काम करती है। नव विवाहिता आठवें महीने के पश्चात अपने पिता के घर नहीं रह सकती, उसे अपनी ससुराल जाना पड़ता है। नोक्ते लोगों का विश्वास है कि संतान पिता के घर ही पैदा होनी चाहिए। वे मायके में संतान का पैदा होना अशुभ मानते हैं।

गर्भावस्था में स्त्रियों के आने-जाने और खान-पान पर कई प्रकार के प्रतिबंध लग जाते हैं। गर्भवती महिला हिरण का माँस, कड़वे फल, सूखा माँस और सूखी मछलियाँ नहीं खाती। वह उन दिनों किसी जानवर का वध भी नहीं कर सकती। उसके लिए मुर्दे को देखना वर्जित होता है। जिस घर में मृत्यु हो जाती है, गर्भवती स्त्री वहाँ नहीं जा सकती।



चित्र 4: नोक्ते महिलाएँ अपनी पारंपरिक वेशभूषा में

इतना ही नहीं, गर्भवती महिला के पति पर भी कुछ प्रतिबंध होते हैं। वह इस अवधि में साँप या दूसरे जानवरों की हत्या नहीं कर सकता। वह घर की किसी वस्तु को बेच नहीं सकता। उसके लिए भी किसी के मृत शरीर को छूना मना है। इस प्रकार पत्नी की गर्भावस्था की इस अवधि में पति-पत्नी दोनों ही नियमों का ईमानदारी से पालन करते हैं।

प्रत्येक नोक्ते ग्राम में नर्स का काम "डाकराम" करती है। वह अपने काम को अच्छी तरह जानती है। बच्चे के जन्म के समय वह सहायता करती है। नोक्ते समाज जुड़वाँ बच्चों के जन्म को अशुभ मानता है।

जन्म के चौथे दिन बच्चे का कर्ण-छेदन होता है। इसी अवसर पर उसके सिर के बाल भी काट दिए जाते हैं। इस प्रकार कर्ण-छेदन और मुण्डन एक साथ होने के बाद बच्चे को अपने मृत पूर्वज का नाम दे दिया जाता है। ये लोग शिशु के जन्म के साथ ही घर के पुराने चूल्हे को भी बदल देते हैं। एक सप्ताह बाद माता अपने बच्चे को लेकर अपने पिता के यहाँ चली जाती है। नाना-नानी या मामा-मामी बच्चे के मुँह में चावल डालते हैं। छोटे रूप में मानो यही इनका अन्न प्राशन संस्कार है।

थोड़े दिन बाद माता अपने बच्चे को लेकर वापस आ जाती है। लौटते समय उसके साथ स्त्रियाँ और जवान लड़कियाँ भी आती हैं। लौटते समय बच्चे को खेत पर भी ले जाते हैं, मानो उसे अपने खेत का दर्शन करा रहे हों जहाँ उसे जीवनभर काम करना है। इस प्रकार अपने भूमिदेवता का आशिर्वाद भी शिशु को दिलवाते हैं। नोक्ते समाज में छोटे बच्चे को जन्म के पश्चात कई संस्कारों से गुजरना पड़ता है। इन संस्कारों में उसके भावी जीवन की मंगलकामना की जाती है।

प्रायः प्रत्येक समाज में कोई-न-कोई अंध विश्वास अपनी जड़ें जमाए ही रहता है। नोक्ते समाज भी इससे अछूता नहीं है। वे भूत-प्रेत में (मृत-आत्माओं में) विश्वास करते हैं और उन्हें प्रसन्न रखने के लिए बलिदान और पूजा का सहारा लेते हैं। पूजा के समय ये लोग सामूहिक नृत्य भी करते हैं। ये लोग घर के देवता को बहुत मानते हैं। आपोंग पीने से पहले प्रत्येक बार उसका एक भाग घर के देवता के लिए जमीन पर डाल देते हैं।

नोक्ते समाज का केन्द्रबिन्दु उनका मुखिया होता है। उसकी बात सभी मानते हैं। वह मुखिया-प्रथा सम्पूर्ण अरुणाचल प्रदेश के केवल तिरप जिले के नोक्ते लोगों में ही अब तक चल रही है।

नामसाँग और बरदुरिया इनके प्रमुख गाँव हैं। यहीं से सारी गतिविधियों का संचालन होता है। गाँवों में लागू होने वाली सभी योजनाओं पर यहीं विचार और बहस होती है। इस प्रकार इनका मुखिया सभी गतिविधियों में सक्रिय सहयोग देता है।

नोक्ते समाज में जाति-प्रथा नहीं है। एक मुखिया के नीचे कई गाँव होते हैं। मुखिया इन गाँवों का सूत्रधार होता है। गाँव वाले भी मुखिया का सम्मान करते हैं तथा उसे भेंट-उपहार देते हैं।

नोक्ते समाज को प्रमुख रूप से दो भागों में बाँटा गया है—मुखिया और उसके वंशजों को लोवांगजात कहते हैं, अन्य लोगों को "सानाजात" कहा जाता है। त्योहारों और खास अवसरों पर लोवांगजात का विशेष स्थान अपने आप दिखाई पड़ जाता है। इनके विवाह भी अपने वर्गस्तर की लड़की से ही होते हैं। चाहने पर भी इस वर्ग के लोग दूसरे वर्ग की लड़की से विवाह नहीं कर सकते। अपने से उच्चवर्ग में भी गोत्र को तो बचाना ही पड़ता है। साधारण तौर पर लोग एक ही विवाह करना पसंद करते हैं, केवल धनी वर्ग ही एक से अधिक विवाह कर पाता है। मामा की लड़की से विवाह करना अच्छा माना जाता है। मामा-बुआ की संतानों का विवाह (क्रास-कज़िन मैरेज) सबसे अच्छा माना जाता है।

सुविधा की दृष्टि से एक बड़े गाँव को कई "चम" में बाँट लिया जाता है। अधिकतर एक ही पूर्वज की संतानों का एक "चम" होता है। इनके गाँवों में मजबूत राजनैतिक संगठन भी होते हैं जिनकी समिति में अनुभवी और प्रभावशाली लोग रखे जाते हैं। पहले इनमें शत्रुओं से लडाई और उनके सिर काटने के अभियान का निर्णय होता था, अब ये संगठन विकास कार्यों में सरकार की सहायता करते हैं। गाँव के छोटे-मोटे झगड़े यहीं निबटा लिए जाते हैं। लोवांग इस प्रकार की समिति का सभापति होता है। समितियों के कार्यकर्ताओं को "नोङवा", गम्बा और टानबा कहते हैं।

मुखिया के सलाहकार को "नोङवा" कहते हैं। इसका काम बहुत महत्वपूर्ण होता है। यदि किसी आदमी की असावधानी से गाँव में आग लग जाती है तब उस आदमी को गाँव भर के लोगों का क्रोध तथा कड़ी सजा भुगतनी पड़ती है। चोरी, बलात्कार और हत्या के अपराधी को भारी जुर्माना देना पड़ता है।

यहाँ के पुरुषों और स्त्रियों की वेशभूषा बड़ी निराली होती है। हाथ-पैरों पर गोदना गुदवाना यहाँ की स्त्रियों को बहुत पसंद है। ये लोग पान खाने के बड़े शौकीन होते हैं। कच्ची सुपाड़ी के स्थान पर ये लोग एक विशेष पेड़ की छाल का सेवन करते हैं। दाँतों को काला करना सुंदरता का निशान माना जाता है। पान उत्पादन करना इनका एक व्यवसाय है जिससे इन्हें आमदनी भी होती है। पानों की माँग मैदानी इलाकों में खूब रहती है।

बहुत समय पूर्व नोक्ते समाज में शत्रुओं के सिर काटने की प्रथा प्रचलित थी। अब इस प्रथा की केवल याद भर रह गई है। प्राचीन काल में एक जनजाति दूसरी जनजाति पर आक्रमण करती रहती थी। पराजित जनजाति को विजेता जाति अपना दास बना लेती थी। दो गाँवों में परस्पर दुश्मनी होने पर बदले की भावना से यहाँ के लोग एक दूसरे पर आक्रमण करते रहते थे।

कभी-कभी नमक के स्थान को लेकर भी दो गाँवों में झगड़े हो जाते थे। सिर काटने की प्रथा के पीछे इनके समाज में एक कथा प्रचलित है – प्राचीन काल में प्रेम का साम्राज्य था, भय का नाम निशान नहीं था। आदमी और जानवर सभी एक साथ रहते थे। इसी तरह

समय बीतता गया, सभी सुखी थे। समय के साथ-साथ जनसंख्या बढ़ने लगी। स्त्री और पुरुषों की जनसंख्या में संतुलन बिगड़ गया। स्त्रियाँ कम और पुरुष अधिक हो गए। स्त्रियों को पाना कठिन हो गया। तब उनको लेकर झगड़े प्रारंभ हो गए।

एक बार एक स्त्री को पाने की होड़ में दो पुरुषों में झगड़ा हो गया और पोटेई नामक एक व्यक्ति मारा गया। पोटेई का भाई छोटा था। बड़ा होने पर वह एक बार जंगल में शिकार खेलने गया। वहाँ उसे एक मधुमक्खी ने काट लिया। उसके बहुत दर्द हआ। वह विचार करने लगा कि उसके बड़े भाई पोटेई को जब मारा गया होगा तब उसे कितना दर्द हुआ होगा। यह सोचकर उसने अपने बड़े भाई के हत्यारे का सिर काट लिया। तभी से शत्रुओं के सिर काट कर लाने की प्रथा प्रचलित हो गई।

कालांतर में यह प्रथा शौर्य का प्रतीक बन गई। शत्रु का सिर काटना वीरता का प्रतीक समझा जाने लगा। शत्रुता हो जाने पर विधिवत शत्रु पक्ष में एक दूत भेजा जाता था। दूत अपने साथ दो लकड़ियाँ लेकर जाता था जिसमें एक लकड़ी एक तरफ नुकीली होती थी, दूसरी दोनों ओर समान होती थी। लकड़ी भेजना हमला करने का अग्रिम संदेश होता था। चुनौती स्वीकार करनेवाला पक्ष लकड़ी की नोक काटकर दोनों लकड़ियाँ वापस कर देता था।

कभी-कभी दूसरी लकड़ी में भी नोक बनाकर वापिस कर दिया जाता था जिसका अर्थ होता था कि "हम आपकी अधीनता स्वीकार करते हैं।" यदि लड़ाई के दौरान सिर काटने का अभियान सफल हो जाता था तो बहादुर लोग नाचते-गाते हुए अपने गाँव वापस आते थे। उस कटे सिर को गाँव में एक पेड़ पर टाँग दिया जाता था। मृतक की आत्मा को दूर रखने के लिए पुरोहित पूजा करता था। गाँव में खुशी की लहर दौड़ जाती थी। अभियान की असफलता का चित्र ठीक इसके विपरीत होता था। हारने पर चुपचाप दबे पाँव अपने घर लौट आते थे। पराजित युवक दुबक कर बैठे रहते थे। इस प्रकार कुछ दिन गाँव से विमुख रहकर हार का अपमान हल्का करते थे।

सिर काटने वाले वीर पुरुष का बड़ा सम्मान होता था। उसके शरीर को भाँति-भाँति के गोदने गोद कर सजाया जाता था। कटे सिरों को साफ कर दावत के लिए बनाए भोजन को उन पर चढ़ाया जाता था। बहादुर लोग सिरों के चारों ओर नाचते थे। इसके पश्चात सिरों को मोरूंग में टांग दिया जाता था।

अब यह प्रथा समाप्त हो गई है, लोग शांति से रहते हैं। परस्पर हमले की कोई शंका उनके मन में अब नहीं रहती।

नोक्ते लोग शव को खुले मचान पर रख देते हैं। मरने वाले की आवश्यक वस्तुएँ भी उसके पास रख देते हैं। उनका विश्वास है कि दूसरे लोक की यात्रा में भी मृतक को उन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ती होगी।

3
तिरप जिले के वांचू

आइए, अब तिरप जिले के दक्षिण-पश्चिम में चलें। यहाँ "वांचू" जन-जाति के लोग रहते हैं। ये लोग बड़े बहादुर और हृष्ट-पुष्ट होते हैं। इनकी सुंदरता देखते ही बनती है। इनका समाज मुख्यतः दो स्तरों पर विभाजित है – वांगहाम और वांगपान। मुखिया का वर्ग वांगहाम कहलाता है। साधारण लोग वांगपान वर्ग के अन्तर्गत आते हैं। आपसी झगड़ों से निपटने के लिए एक मुखिया होता है। मुखिया वर्ग की बात आज भी सुनी जाती है, उसे अब भी पुरा सम्मान दिया जाता है। सभी वर्ग के लोग आपस में बड़े प्रेम से रहते हैं। केवल उत्सवों और विवाहों के समय पर ही इनके सामाजिक वर्गभेद उभरकर सामने आते हैं।

वांचू लोगों का इलाका कुछ — "जनों" में बँटा होता है। एक जन मे लगभग तीन-चार गाँव होते हैं। प्रत्येक "जन" का एक मुखिया होता हैं। समय पड़ने पर पहले सब लोग मुखिया की मदद के लिए खड़े हो जाते थे। यह उस समय ठीक भी था, क्योंकि तब दुश्मनों का मुकाबला करने के लिए यह जरूरी था। अब इस तरह का खतरा नही है, अतः जन की व्यवस्था धीरे-धीरे कमजोर पड़ने लग गई हैं।

यहाँ गाँव में दो घर बड़े महत्व के समझे जाते हैं—"पानू" और "पासा"। "पानू" मुखिया का घर होता है जो सभी सामाजिक गतिविधियों का केन्द्र होता है। पहले जब मनुष्यों के सिर काटने की प्रथा प्रचलित थी, तब सिर काट कर यहीं रखे जाते थे।

आपको यह जानकर अचरज होगा कि इस जाति की अविवाहित लड़कियाँ अपने घरों में नहीं सोती। वे रात को सोने के लिए बने सामूहिक शयन-गृह में जाती हैं, जिसे "सिन" कहा जाता है। यहाँ गाँव की सभी कुवाँरी लडकियाँ एक साथ सोती हैं। इस प्रथा के पीछे यह भाव छिपा है कि इन गृहों में छोटी लड़कियाँ अपने से बड़ी लड़कियों के सम्पर्क में आएँ और अपने भावी जीवन में काम में आने वाली जरूरी बातें सीखें। इन घरों में प्राय: कढ़ाई-बुनाई, गृहकार्य आदि से संबंधित बातों को सिखाने की व्यवस्था होती है। एक बूढ़ी विधवा की देखरेख में इन सिनों की व्यवस्था चलती है। युवक यहाँ आकर युवतियों से



चित्र 5: वांचू पुरुष अपने पूरे श्रृगांर में

बातचीत करते हैं और भविष्य के लिए अपने-अपने जीवन-साथी को चुनते हैं। नाचना और गाना भी चलता रहता है। अपने ही गोत्र की लड़कियों के साथ लड़के किसी प्रकार की स्वतंत्रता नहीं ले सकते। नियम तोड़ने वाले को कड़ी सजा दी जाती है।

जीवन साथी का चुनाव तो लड़के-लड़कियाँ कर लेते हैं, किन्तु विवाह माँ-बाप ही करते हैं। उनकी भावनाओं का आदर वांचू समाज में होता है। माँ-बाप की ओर से चचेरे भाई-बहिन के विवाह को प्राथमिकता दी जाती है। इसमें मामा की लड़की और बुआ के लड़के का विवाह आदर्श विवाह माना जाता है।

वांचू जाति के लोगों की वेश-भूषा भी बड़ी निराली होती है। पुरुष अपनी बाहों पर रंग-बिरंगा "बाजूबन्द" पहनते हैं जो कई रंग के मोतियों से बना होता है। इसके अतिरिक्त इनका पूरा शरीर लगभग खुला रहता है। कभी-कभी पुरुष एक शाल का उपयोग करते हैं। पहले ये लोग हाथी-दाँत के गहने, सींग, सीप, पंख और फूलों से अपने कानों को और बालों को सजाते थे। अब यह प्रथा धीरे-धीरे कम हो रही है।

स्त्रियाँ सुन्दर स्कर्ट पहनती हैं, वे शाल का प्रयोग भी करती हैं। स्त्रियाँ और पुरुष गोदने-गुदवाने में बड़ा विश्वास करते हैं। यह काम बड़ा कलापूर्ण होता है। इनके शरीर के अलग-अलग भागों पर अलग-अलग तरह की डिजायनें गुदी होती हैं। गर्दन, आँखों के पास, गले में, छाती पर तथा पीठ और पेट पर सब जगह गोदने देखे जा सकते हैं।

गुदवाना व्यक्तिगत सजावट का अंग है। वांचू जीवन में इसका बड़ा महत्व है। लड़कियों की उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनके शरीर को गोदने वाली सजावट बढ़ती जाती है। मुखिया परिवार के सदस्यों के शरीर पर तो यह सजावट देखते ही बनती है। इसी सजावट से कई बार उसके मुखिया परिवार से संबंधित होने का परिचय प्राप्त हो जाता है।

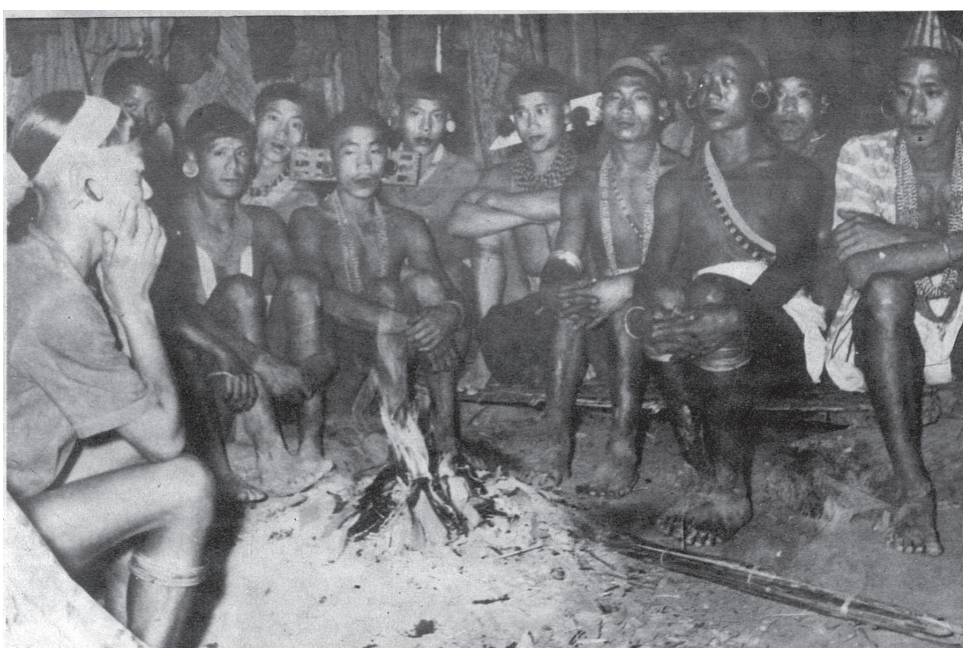
गोदने गुदवाने का काम हर समय नहीं चलता। यह शुभ अवसरों पर शुभ मुहूर्त में ही सम्पन्न होता है। इसमें बड़ी हिम्मत की आवश्यकता होती है, क्योंकि गोदने-गुदवाने में पीड़ा भी बहुत उठानी पड़ती है जो किसी आपरेशन के दर्द से कम नहीं होती। चूँकि वांचू जाति के लोग बहादुर होते हैं, अतः यह कष्ट सहन करना उनकी मान्यता और आस्था का प्रतीक बन गया है। गोदने वालों को बड़े सम्मान से देखा जाता है। दक्षिणा में उन्हें चावल, चावल की बियर और मांस दिया जाता है।

अपने पड़ोसी नोक्ते जाति के लोगों की भाँति ही वांचू जाति के लोगों में भी शत्रु के सिर काटने की प्रथा थी। शत्रु के सिर को काटने के लिए मुहिम पर जाने के पूर्व शुभ घड़ी और उसके परिणाम पर विचार करके जाया जाता था। यदि मुहूर्त अच्छा नहीं होता था तो इस काम को आगे के लिए टाल दिया जाता था। इस प्रकार वंशानुगत शत्रु-गाँव के लोगों के सिर काट कर लाना इस अभियान का उद्देश्य होता था। अभियान योजनाबद्ध तरीके से रात को पूर्ण किए जाते थे।

शत्रु के कटे सिर लाना इन्हें अलौकिक शक्ति देता था और यह माना जाता था कि इससे खेती में पैदावार बढ़ती है। सिर काटने के अभियान के समय शत्रु पक्ष के सभी लोगों के सिर काट लिए जाते थे। मुखिया का सिर एक साधारण आदमी नहीं काट सकता था। जिसकी रगों में राजसी खून होता था वही व्यक्ति मुखिया का सिर काट सकता था। इस नियम का कठोरता से पालन होता था। इस नियम के दोषी आदमी को जीवनभर बकरे, गाय और मुर्गी के माँस से वंचित रहना पड़ता था। उनके समाज में ऐसी मान्यता थी कि यदि ऐसा दोषी व्यक्ति चोरी-छिपे इन तीनों प्रकार के माँस को खाएगा तो कोढ़ी हो जाएगा।

सिर काटने का काम भी विधिवत होता था। अगर एक ही दुश्मन पर कई बहादुर मारने को एक साथ टूट पड़ते थे तो पहले वार करने वाले को सिर मिल जाता था। जो वार करने में दूसरे नम्बर पर होता था, उसे दुश्मन का हाथ काटने का अधिकार होता था। तीसरे नम्बर पर हमला करने वाले को दुश्मन का एक पैर काटने का अधिकार होता था। इस प्रकार कटे सिर, हाथ एवं पाँव जीतने वालों की वेशभूषा के अंग बन जाते थे।

जो सिर काटता था, उसे गले में पीतल या लकड़ी का बना सिर पहनने का अधिकार होता था। जो आदमी जितने सिर काट चुका होता था, वह उतने ही पीतल या लकड़ी के सिरों की माला पहन सकता था। हाथ काटने वाला आदमी अपनी व्यक्तिगत सुंदरता बढ़ाने के लिए लकड़ी का हाथ पहन कर अपनी सुंदरता बढ़ाता था।



चित्र 6: वांचू लोगों का मोरुंगघर

इसी प्रकार तीसरे नम्बर के हमलावर को लकड़ी का एक पैर अपनी टोकरी पर लगाने का अधिकार होता था। असली सिर, हाथ और पैर तो मोरुंगघर में रख दिए जाते थे।

काट कर लाए गए सिर मुखिया के घर के पास लम्बे बाँसों पर लटका दिए जाते थे। जब कटे सिरों का माँस सड़-गल जाता था तब उन्हें ठीक से साफ करके मोरुंगघर में रख दिया जाता था। मुखिया की खोपड़ी का एक अलग निशान बना दिया जाता था।

सिर काट कर लाने के पाँच दिन बाद सिर लाने वालों के शरीर के अलग-अलग भागों को गोदने का काम किया जाता था। यह काम गाँव के विशेषज्ञों द्वारा किया जाता था। उनके शरीर पर गोदी गई कलाकृतियाँ ही उनके विशेष बहादुर होने का संकेत करती थीं।

गोदने गुदवाने के पश्चात ये बहादुर अपने-अपने घरों में एक दिन के लिए बन्द हो जाते हैं और किसी से बात नहीं करते। फसल काटने के पश्चात वांचू कटे सिरों को भोजन अर्पण करने का उत्सव मनाते थे। गाँव का पुरोहित गाम्पा कटे सिरों को चावल से बनी बियर और अंदरक के टुकड़े चढ़ाता था।

वांचू समाज में अविवाहित लड़के भी एक साथ मोरुंगघर में रात को सोते हैं। यह इनका शयन गृह तथा गाँव के प्रौढ़ों का अन्य सभी कार्य करने का केन्द्र होता है। सिर काटने की योजना भी इन्हीं घरों में बनती थी। कटे सिरों के गोदाम भी यही मोरुंगघर होते थे और हथियार भी यहीं रखे जाते थे।

प्रत्येक मोरुंगघर में एक बहुत बड़ा लकड़ी का ढोल होता है जिसे वांचू लोग "खास" कहते हैं। इसे एक पेड़ के तने को खोखला करके बनाते हैं। यह ढोल नाव की शक्ल का होता है। इस पर आदमी के सिर, जानवरों, चिड़ियों तथा साँपों की आकृतियाँ बनी होती हैं। लोग खड़े होकर बड़े-बड़े ठोस डंडों से इन्हें बजाते हैं। इसकी आवाज दूर-दूर तक जाती है। लोग तरह-तरह की आवाजें निकालते हैं। यह लॉग ड्रम लगभग पाँच मीटर लम्बा होता है जिसे बहुत सारे लोग मिलकर बजाते हैं।

बदलते परिवेश में अब मोरुंगघरों का उपयोग पहले जैसा नहीं होता है। यहाँ अब विविध प्रकार का सामाजिक प्रशिक्षण होता रहता है। वांचू परिवार पितृ प्रधान होते हैं। पिता परिवार का प्रधान व्यक्ति होता है, उसकी बात सभी मानते हैं। पिता के मरने पर बड़े लड़के को पिता की सम्पत्ति मिल जाती है। यदि छोटे भाई अलग होना चाहते हैं तो बड़ा भाई उन्हें जमीन तथा दूसरी सुविधाएँ देता है। सम्पत्ति का वितरण नहीं होता।

वांचू लोगों का जीवन कई संस्कारों के बीच व्यतीत होता है। जन्म से मृत्यु तक कई संस्कार होते हैं। समय-समय पर होने वाले उत्सव, दावतें, पुजाएँ और अन्य कार्यक्रम उनके जीवन को रंगीन बनाते हैं, इनसे उन्हें जीवन की लालसा और स्फूर्ति मिलती रहती है। अपने वंश को आगे बढ़ाने की इच्छा इनमें बड़ी प्रबल होती है।

एक गर्भवती स्त्री को पाँचवें महीने के पश्चात कई प्रतिबंधों को मानना पड़ता है। वह अलग सोती है। वह शमशान को नहीं देख सकती। जिस घर में मौत हो जाती है, वहाँ जाने की मनाई भी उसके लिए होती है। वह सूखा माँस या मछली नहीं खा सकती। वह इन्द्र-धनुष भी नहीं देख सकती। उनकी मान्यता है कि गर्भवती स्त्री द्वारा इन्द्र-धनुष देखने पर इन्द्र-धनुष का देवता पेट के बच्चे को खा जाता है। ऐसा नहीं भी होगा तो गर्भपात तो अवश्य हो जाएगा।



चित्र 7: वांचू लोग लॉग ड्रम बजाते हुए

गर्भवती स्त्री के पति को भी कई नियमों का पालन करना पड़ता है। वह इस समय घर की कोई वस्तु बेच नहीं सकता। वह साँप नहीं मार सकता। वह दूसरों के साथ शिकार पर जा तो सकता है किन्तु शिकार कर नहीं सकता।

बच्चे के जन्म के पश्चात् जच्चा कई दिन तक अपने कमरे में बन्द रहती है। दस दिन के पहले वह घर से बाहर नहीं जा सकती। जन्म के दो दिन बाद ही बच्चे का मुंडन संस्कार कर दिया जाता है। पिता अपने मित्रों के साथ मछली पकड़ने जाता है। इस दिन शिकार में उसका सफल होना आवश्यक है। पिता और उसके मित्रों के शिकार से लौटने से पूर्व ही मुंडन हो जाना आवश्यक है। मुंडन वाले दिन ही बच्चे का नामकरण संस्कार होता है। इस अवसर पर एक दावत का आयोजन भी किया जाता है।

जब बच्चा तीन माह का हो जाता है तब उसका अन्न संस्कार होता है। उस दिन बच्चे के मुँह में चावल डाले जाते हैं। नाना-नानी तथा मामा-मामी को इस अवसर पर निमंत्रण दिया जाता है क्योंकि यह काम उन्हें ही करना पड़ता है। इस संस्कार को उनकी भाषा में "नाउथोम" कहते हैं।

वांचू लोग बड़े बहादुर होते हैं। ये लोग छोटी सजा में कम विश्वास करते हैं। पहले इनके यहाँ चोरी की सजा मौत होती थी जिसके लिए वे अपराधी को या तो पेड़ पर लटका देते थे या पत्थर से बाँधकर उसे नदी में फेंक देते थे। मुखिया की पत्नी से अनैतिक संबंध बनाने वाले की सजा भी मौत हुआ करती थी।

वांचू लोग किसी के मर जाने पर उसके पार्थिव शरीर को चौबीस घण्टे अपने ही घर पर रखते हैं। इस बीच सभी रिश्तेदार आ जाते हैं। इस अवसर पर एक खास किस्म का "कफन" बनाया जाता है। वांचू नियम बड़े ही निराले होते हैं। वे पार्थिव शरीर को न तो जलाते हैं और न गाड़ते हैं। एक छोटा-सा प्लेटफार्म बनाकर उस पर छाया कर देते हैं। बाद में कफन में लिपटे पार्थिव शरीर को उसी पर रख देते हैं। एक लकड़ी या बाँस की आकृति बनाकर पास में रख दी जाती है। यह आकृति मृतक की ही आकृति मानी जाती है। पास में एक बाँस गाड़ दिया जाता है जिस पर मृतक की आवश्यकता की सभी वस्तुएँ टाँग दी जाती हैं। उसके हथियार भी वहीं टाँग दिए जाते हैं। उनका विचार है कि दूसरी दुनिया में उसे इन सब वस्तुओं की आवश्यकता रहेगी।

एक महीने बाद जब मांस गल-गल कर गिर जाता है तब पार्थिव शरीर से सिर काट कर अलग कर लिया जाता है। उसे धोकर साफ कर लिया जाता है और लाल कपड़े में लपेटकर एक बड़े पत्थर के नीचे गढ्ढे में रख दिया जाता है ताकि मरने के बाद भी उसका सिर सुरक्षित रहे।

4

लोहित और दिबांग के मिशमी

आइए अब अरुणाचल के मिशमी लोगों से मिलें। असम के तिनसुकिया से धौलाघाट तक पक्की सड़क है। तेजू जाने के लिए हमें धौलाघाट से सदिया तक पानी के छोटे जहाज में जाना पड़ता है। ब्रह्मपुत्र नदी में दो घंटे की यात्रा करनी पड़ती है। नदी की यात्रा बहुत ही अच्छी लगती है। प्राकृतिक दृश्य और जल-पक्षियों की क्रीड़ा मन को मोह लेती है। नदी की दूसरी तरफ हम सदियाघाट पर उतरते हैं। यहीं से हम डिगारू आदि नदियों को पार करके लोहित के मुख्यालय तेजू पहुँचते हैं। तेजू का रास्ता वर्ष में चार महीने बंद रहता है। तब हवाई जहाज की यात्रा ही जाने का एक साधन रह जाता है। वर्षा में डिगारू नदी को केवल हाथी से पार कर सकते हैं। अरुणाचल प्रदेश में लोहित और दिबांग जिले प्रदेश के ऐसे भूभागों में से हैं जहाँ के निवासी मिशमी सदैव ही कुदरत से संघर्ष करते आए हैं। मिशमी पहाड़ियाँ संसार के कठोरतम भूभागों में से एक हैं। इन जिलों के उत्तर में लगने वाली सीमारेखा "मैक मोहन" लाइन है तथा इनका निचला भाग असम प्रदेश से लगता है।

लोहित जिले का नामकरण उस क्षेत्र में बहने वाली "लोहित्य" नदी के आधार पर हुआ है जिसमें अन्य कोई छोटी-छोटी नदियाँ भी आकर मिलती हैं। जिस प्रकार पौराणिक काल से गंगा का महत्व रहा है, उसी प्रकार महाभारत में इस "लोहित्य" नदी का वर्णन मिलता है। यहाँ के निवासी भी इसे गंगा जैसा ही पवित्र और महान मानते हैं। कामलांग, डिगारू, टिंडिग देलाई, कालुंग आदि वे छोटी नदियाँ हैं जो इस क्षेत्र में बहती हैं और "लोहित" में आकर मिल जाती हैं।

यहाँ के निवासियों की दैनिक जीवन की कठिनाइयों को बढ़ाने में यहाँ की प्रकृति का बहुत बड़ा हाथ है। भूमि उपजाऊ और समतल नहीं है। समतल स्थान न के बराबर है, हर तरफ घने जंगल हैं। इन सबके ऊपर आने-जाने के रास्तों के नाम पर केवल कुछ पगडंडियाँ-भर हैं। सुदूर ऊपरी इलाकों में तो मीलों चलने पर भी आदमी का नामोनिशान नहीं दिखाई पड़ता।



चित्र 8: मिशमी स्त्रियाँ गाते-बजाते हुए

बाढ़ और भूकंप तो इनके जीवन के अंग ही बन गए हैं। 15 अगस्त 1950 को जब सारा देश आजादी की चौथी वर्षगाँठ मना रहा था, इस इलाके का एक भाग भूकंप और बाढ़ से जूझ रहा था। भूकंप से पहाड़ों के खण्ड ढू-ढू करके नीचे गिर रहे थे। नदियों का रास्ता रुक जाने से बाढ़ के पानी ने गाँव के गाँव तबाह कर दिए थे। वहाँ के लोग आज भी ध्वस्त पर्वत श्रेणियों के निशानों को देखकर काँप उठते हैं।

कुदरत के इतने भारी प्रकोप भी मिशमियों के धैर्य और साहस को नहीं डिगा सके। प्राकृतिक बाधाओं से जूझना जैसे इनके जीवन का एक हिस्सा ही बन गया है, इसी में वे आनंद लेते हैं। नृत्य, गान और ढोलक-डमरु उनके जीवन का महत्वपूर्ण हिस्से हैं। वे बिना नाचे, गाए और बजाए रह ही नहीं सकते।

आसाम से लगने वाले निचले भाग में वर्षा का औसत 200 इंच है। अप्रैल से जुलाई तक यहाँ बहुत वर्षा होती है। वर्षा की अधिकता के कारण कभी-कभी तो कोहरे में थोड़ी दुर की वस्तु भी नहीं दिखाई पड़ती। प्रकृति ने इन्हें जीवन की बहुत सुख-सुविधाएँ तो नहीं दी, लेकिन दो-तीन वस्तुएँ अमूल्य उपहार के रूप में अवश्य दी हैं जो मानो इनकी अमूल्य सम्पदाएँ हैं। ये उपहार हैं — मिशमी तीता और कस्तूरी। बर्फीली ऊँचाइयों पर हिरन से

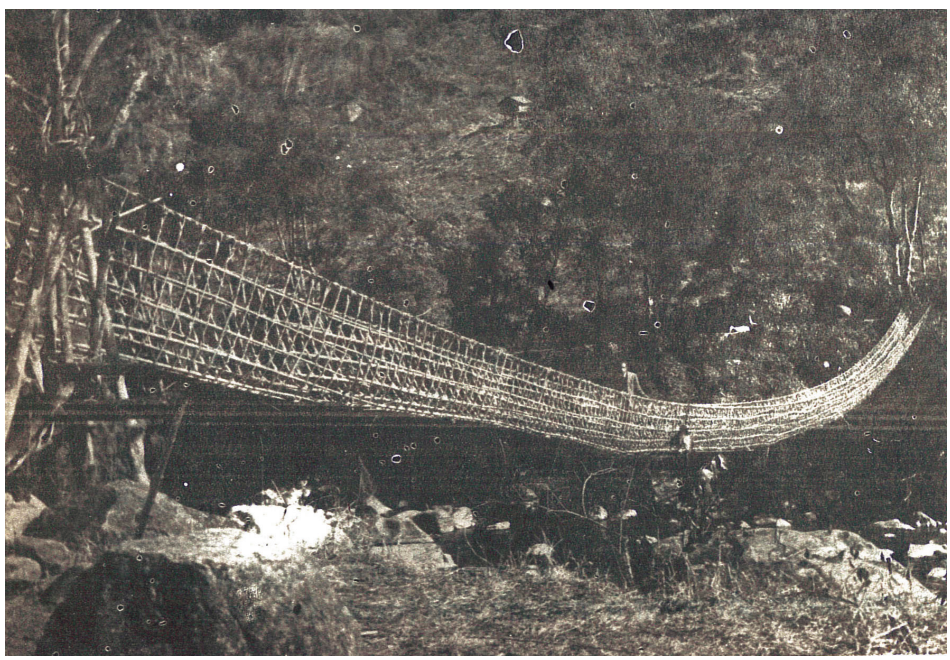
मिलने वाली कस्तूरी और जंगलों से प्राप्त होने वाली मिशमी तीता एक प्रकार की बहुमूल्य औषधि हैं जो बहुत-सी बीमारियों में रामबाण की भाँति काम करती हैं। इसके अतिरिक्त अन्य वन्य उपजें भी हैं जो यहाँ के लोगों को प्रकृति से वरदान-स्वरूप मिलीं हैं।

मिशमी लोगों में तीन प्रधान फिरकें हैं। एक चूली कटा मिशमी या इदूमिशमी, दूसरा मिजू या कमान मिशमी और तीसरा डिगारु या तारा ओ। इन तीनों के प्राचीन नाम क्रमशः चूली कटा, मिजू और डिगारू हैं, इन दिनों ये अपने को ईद मिशमी, कमान मिशमी तथा तारा ओ मिशमी कहलवाना ही अधिक पसंद करते हैं।

ईदू मिशमी एक विशेष वर्ग है। इस वर्ग की एक विशेषता यह है कि ये अपने बालों को एक खास ढंग से काटते हैं, सम्भवतः इसीलिए इन्हें चली कटा मिशमी कहा जाता रहा है। असमिया में "चूली" का अर्थ "केश" ही होता है। ये लोग अपनी उपजातियों के नाम नदियों के नामों के आधार पर रखते हैं।

मिशमी लोगों की मेहमान-नवाजी और सहृदयता किसी से छिपी नहीं रही है। इनकी स्त्रियाँ और पुरुष दोनों ही धूम्रपान के शौकीन होते हैं। इनका तम्बाकू पीने का पाइप बड़ा सुन्दर होता है। ये लोग बड़े सुरुचिपूर्ण और कलात्मक अभिरुचि के होते हैं।

मिशमी स्त्री-पुरुषों की वेष-भूषा बड़ी सुंदर होती है। स्त्रियों की केश-सज्जा विशेष आकर्षक होती है। वे अपने कपड़ों में सुन्दर डिजायन डालती हैं। इनके काले या मेरून



चित्र 9: मिशमी लोगों द्वारा बनाया हुआ बाँस और बेंत का एक पुल

रंग के कोटों पर बड़ी सजावट होती है। पुरुष बेंत का बना टोप पहने रहते हैं जो धुप और वर्षा से सिर बचाता है। भालू की खाल का बना बैग सदा इनके कंधों पर लटका रहता है। ईदू मिशमी लड़ाई के समय पहने जाने वाला कोट (वार कोट) भी रखते हैं। यह कवच की तरह का होता है जो तीरों के वार से इनकी रक्षा करता है।

तारा ओ मिशमी स्त्रियाँ सुन्दर शाल बुनती हैं। इन शालों पर तरह-तरह की डिजायनें देखते ही बनती हैं। इन डिजायनों में इनके चुतर्दिक परिवेश की छाप स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। कमान मिशमियों का कहना है कि उनके पूर्वजों ने तितलियों के पंखों, साँपों और मछलियों को देखकर ही कपड़ों पर डिजायनें बनाई हैं। इस प्रकार आरम्भ से ही प्रकृति की खुली गोद में रहने के कारण उनके हर कार्य-कलाप में प्रकृति की छाया झलकती है। नदियों से इनके जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध है। नदियाँ प्रायः चारों तरफ हैं, सब ओर पानी ही पानी दिखाई देता है। यहाँ तक कि वर्षा में तो जीवन ही दूभर हो जाता है। फिर भी, नदियाँ इनके जीवन का एक अंग बन गई हैं। इसलिए आये दिन इन्हें नदी पार करने के लिए पुल आदि बनाने पड़ते हैं और सचमुच ही मिशमी लोग पुल बनाने में बड़े माहिर हो गए हैं। भयंकर घाटियों और नदियों को पार करने के लिए बनाए गए उनके पुलों को देखकर साधारण आदमी तो एक बार दहल ही जाता है। इन पुलों की बनावट देखकर कुशल इन्जीनियर भी दाँतों तले उँगली दबा लेते हैं। ये पल यहाँ के रहने वाले मिशमी लोगों के जीवन के प्राण होते हैं। पुल बेंत के बनाए जाते हैं जिनको पार करना साधारण आदमी के बस की बात नहीं हैं। उसे पार करने के लिए विशेष कौशल और हिम्मत की आवश्यकता होती है।

मिशमी लोगों में शादी-विवाह एक मध्यस्थ के द्वारा सुनिश्चित कराए जाते हैं, किंतु फिर भी इन लोगों में लड़की की पसंदगी को महत्व दिया जाता है। लड़की की स्वीकृति के बिना उसका विवाह नहीं हो सकता। भारत के अन्य भागों की भाँति दहेज यहाँ कोई समस्या नहीं है। यहाँ तो लड़के वाले लड़की वालों को दहेज (दुल्हन की कीमत) देते हैं जिसे इनकी भाषा में "ड्राक ब्री" कहते हैं। दोनों पक्षों की आर्थिक दशा देखकर ही यह "ड्राक ब्री" तय की जाती है। यह "ड्राक ब्री" नगद धनराशि न होकर पशुओं और कपड़ों के उपहार के रूप में होती है। जब तक लड़की ससुराल नहीं जाती, लड़का लड़की के घर आता-जाता रहता है। ससुराल जाना या न जाना लड़की की इच्छा पर निर्भर रहता है। यहाँ तक कि कभी-कभी तो दो-दो वर्ष तक लड़की ससुराल नहीं जाती।

इनके समाज में बहु-विवाह पर रोक नहीं है, यद्यपि कुछ धनी लोग ही एक से अधिक विवाह कर पाते हैं। सामान्य वर्ग तो एक विवाह ही करता है। विवाह के पश्चात प्रत्येक स्त्री "अंब्रइउ" के उत्सव का आयोजन करती है। इस आयोजन में लड़की के सुखी विवाहित जीवन की कामना की जाती है। इनके समाज में विवाह के पश्चात की यह एक अनिवार्य परम्परा है जिसका कोई उल्लंघन नहीं करता।



चित्र 10: मिशमी पुरुष पाइप पीते हुए

गर्भावस्था में स्त्री को कई नियमों का पालन करना पड़ता है। होने वाले बच्चे के पिता को हिरण का माँस खाने से वंचित होना पड़ता है, क्योंकि उनके विचार से आने वाली संतान ईश्वर की कृपा से आ रही है और परमात्मा हिरण की हत्या कर उसके माँस को खाने से बच्चे के पिता से रुष्ट हो जाएगा।

मिशमी लोगों में अंतिम संस्कार की प्रक्रिया बड़ी जटिल है। मृतक के शव को लगभग पाँच-छह दिन सगे सम्बन्धियों के आने तक रखा जाता है। उनका पुरोहित इसी बीच मृतक की उन परिस्थितियों का अध्ययन करता है जिसमें उसकी मृत्यु हुई है अर्थात् वह मौत के कारणों का पता लगाता है। इस प्रकार लाश पड़ी ही रहती है। ईदू मिशमी मृतक को दफना देते हैं।

5
अरुणाचल के "आदी"

पूर्वी और पश्चिमी सियाँग जिलों में "आदी" जनजाति के लोग रहते हैं। पासीघाट और अलाँग इनके मुख्यालय हैं। मुर्कांगसिलक रेलवे-स्टेशन से केवल डेढ़ घण्टे में हम पासीघाट पहुँच सकते हैं। अलाँग जाने के लिए सिलापथार रेलवे-स्टेशन से पाँच घण्टे लगते हैं। ये दोनों मुख्यालय पक्की सड़कों से जुड़े हुए हैं। इस प्रदेश में आदी का अर्थ होता है "पर्वतवासी"।

स्वतंत्र प्रकृति के "आदी" लोग बड़े प्रगतिशील होते हैं। पहले इन्हें "आबोर" कहकर पुकारा जाता था, किन्तु अब आबोर के स्थान पर "आदी" शब्द का प्रयोग होता है। गोलोंग, पद्म, मिन्योंग, सिमोंग, पासी, पंगी, बोरी, ओशिंग, टंगम, रामो, पिलिवो, और बोकार आदि जनजातियाँ भी "आदी" समूह में आती हैं। एक ही संस्कृति इन सबको जोड़े हुए है। गालोंग, मिन्योंग और पद्म संख्या में अधिक हैं और दूसरों की तुलना में अधिक उन्नत हैं।

"मोसुप" आदी समाज की एक बड़ी देन है। यह लड़कों का एक संगठन होता है। इसी प्रकार लड़कियों के संगठन को "राशिंग" कहते हैं। मोसुप में ही "केबाँग" (ग्राम पंचायत) का कार्यालय होता है जहाँ केबाँग की मीटिंग और बैठकें होती हैं। "केबाँग" को अलग-अलग जनजातियों में अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। मिन्याँग इसे "डेरे", मिलाँग "गापटेक", बोरी और ओशिंग जनजाति के लोग इसे "ब्याँगो" नाम से पुकारते हैं।

मोसुप गाँव में ऐसी जगह बनाया जाता है जहाँ से अधिकांश भूभाग और रास्ते दिखाई देते हों। यह बिना कमरों का एक बहुत बड़ा घर जैसा होता है जो तीन तरफ से खुला रहता है। सिर्फ पीछे का भाग ढका रहता है। कहीं-कहीं मोसुप चारों तरफ से बंद भी होता है किन्तु उसमें आने के रास्ते कई होते हैं। मोसुप में बहुत से "मेरुम" बने होते हैं जिसे हम अपनी भाषा में चूल्हा कह सकते हैं। एक-एक उपजाति के लिए एक-एक चूल्हा होता है।

मोसुप के सदस्य दस वर्ष से अधिक की उम्र के लड़के ही बन पाते हैं। एक बड़ा और अनुभवी लड़का मोसुप का काम देखता है। अनुशासन पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। अनुशासन भंग करने वाले लड़के को सजा भी मिलती है। मोसुप में रोम-सोम नाम का चूल्हा



चित्र 11: बोरी पुरुष

गाँव के बूढ़े और विकलांग लोगों के लिए होता है। ये लोग दिन भर यहाँ रहते हैं और रात को सो भी सकते हैं। ग्राम पंचायत के काम के अलावा मोसुप में शिकार के कार्यक्रम एवं त्योहारों और दावतों के निर्णय इत्यादि भी लिए जाते हैं। कभी-कभी मोसुप में चलने वाले लम्बे कार्यक्रमों में लड़कियाँ भी आ जाती हैं और नाच में भाग लेती हैं।

इस प्रकार "मोसुप" समाज और संस्कृति का एक केन्द्र होता है। यह "मोसुप" आदी जनजाति के समाज के संगठन और सहकारिता का आदर्श उदाहरण है। हमारे समाज की ग्राम पंचायतों और आंचलिक समितियों के समान ही ये सामाजिक संगठन यहाँ पहले से ही बने हुए हैं।

राशिंग

जैसे "मोसुप" लड़कों की गतिविधियों और भावी जीवन के प्रशिक्षण का केन्द्र होता है वैसे ही अविवाहित लड़कियों के संगठन को "राशिंग" कहते हैं। अविवाहित युवतियाँ रात को भोजन के बाद राशिंग" में एकत्रित हो जाती हैं और रात को वहीं सोती हैं। यहाँ बड़ी रात तक लड़कियाँ सूत कातने और कपड़ा बुनने का काम करती हैं। एक दूसरे की सहायता करना यहाँ का नियम है। बिना किसी प्रशिक्षण केन्द्र में गए लड़कियाँ यहाँ कपड़ा बुनने की कला में प्रवीण हो जाती हैं। कपड़े की नई-नई डिजाइनें यहीं तैयार होती हैं। राशिंग में ही लड़कियाँ अनुशासन में रहने और बड़ों की आज्ञा मानना सीखती हैं। "मोसुप" की तरह अनुशासन पर यहाँ बड़ा जोर दिया जाता है। राशिंग में ही लड़कियों को भावी जीवन की तैयारी की शिक्षा मिलती है। मोसुप में युवक-युवतियों से मिल सकते हैं। इस तरह के मिलने को समाज बुरा नहीं मानता। यहीं लड़के और लड़कियाँ अपना जीवन साथी चुन लेते हैं। "राशिंग" में आरंभ होने वाला प्रेम माता-पिता की अनुमति से बाद में विवाह का रूप ले लेता है। सुखी जीवन का सोपान "राशिंग" लड़कियों को विवाहित जीवन में आने वाली समस्याओं के लिए तैयार कर देता है। विवाह की तैयारी के लिए जीवन साथी के चुनाव का संकेत पाने पर लड़के की माँ बात को आगे बढ़ाती है। वह इस अवसर के लिए विशेष "आपोंग" (चावल से बनी बीयर) बनाती है। एक भुनी गिलहरी, अदरक की चटनी और आपोंग लेकर वह लड़की के घर जाती है। अगर लड़की के घर वाले लड़के की माँ की भेंट स्वीकार कर लेते हैं तो इसे सगाई समझा जाता है।

इस तरह लड़के और लड़की में विवाह का रिश्ता तय हो जाता है। इस रिश्ते के साथ ही लड़की की वेशभूषा में एक बदलाव आ जाता है और वह बेंत की बनी एक वस्तु कमर के पीछे पहनने लगती है। इस नए संबंध के साथ लड़का लड़की के घर जा सकता है। वह लड़की के यहाँ कुछ समय व्यतीत करने की स्वतंत्रता पा लेता है। उसे लड़की के घर रात बिताने की भी स्वतंत्रता रहती है। लड़का भी समय-समय पर लड़की के घर वालों को आपोंग और माँस भेट में देता रहता है। "इत्तर" नाम के त्यौहार से यह भेंट देने का काम आरंभ हो जाता है। इसे "लंगकांग" कहते हैं। लड़की के घर से भी इसी तरह की भेंट लड़के के घर भेजना आरम्भ हो जाता है। लड़का एक सूअर की बलि देकर उसका माँस लड़की

के घर भेज देता है। यह काम तब तक चलता रहता है जब तक कि लड़की अपने माँ-बाप के साथ रहती है। यह प्रथा खासकर "पद्म" लोगों में अधिक प्रचलित है।

मिन्याँग विवाह की प्रथा

मिन्याँग लोगों में विवाहं तय करने की दूसरी प्रथा है। जब लड़का विवाह की इच्छा प्रकट करता है, तब गाँव के बड़े-बूढ़ों को खबर दे दी जाती है। अगर वे प्रस्ताव को मान लेते हैं तो बात आगे बढ़ती है।

एक बूढ़ी औरत को मध्यस्थ की भूमिका निभानी पड़ती है। उसे "अरेबिना" कहते हैं। सूखी गिलहरी, माँस और आपोंग लेकर वह लड़की के घर जाती है। वह जाकर कहती है – "मैं कुछ सब्जी की तलाश में आई हूँ।" इससे विवाह का अभिप्राय होता है। प्रस्ताव मंजूर हो जाने पर वह बूढ़ी औरत अपनी भेंट (आपोंग कादंग) दे देती है। फिर दोनों ओर से इस तरह की भेंट देने का सिलसिला चलता रहता है। यदि बात बीच में नहीं टूटती तो लड़के की माँ बहुत सारी आपोंग (रेयिंग आपोंग) और दूसरी खाने की चीजें लड़की के यहाँ लेकर जाती है। लड़की से संबंधित सभी बड़ी-बूढ़ी औरतों को इस अवसर पर खास निमंत्रण दिया जाता है। लड़के की माँ आपोंग और दूसरी खाने की चीजों से, जिनमें नमक और अदरक की चटनी भी रहती है, आवभगत करती है। प्रत्येक वृद्ध को एक सूखी गिलहरी भेंट में दी जाती है। इस समय खाने में मिर्च नहीं रहती। मिर्च की कमी अदरक से पूरी की जाती है। इसके साथ ही लड़के और लड़की विवाहित हो जाते हैं। शादी में दूसरी और कोई रस्म नहीं होती। विवाह की प्रक्रिया सम्पन्न होने के बाद भी लड़की अपने माँ-बाप के साथ पहले बच्चे के जन्म तक रहती है। इसी बीच लड़का अपना अलग घर बना लेता है और अपनी गृहस्थी जमाता है। अगर लड़की चाहे तो तीसरे बच्चे के जन्म तक अपने माँ-बाप के घर रह सकती है। इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है। जब तक लड़की अपने घर रहती है, लड़के को "माकबो" कहते हैं। इसका अर्थ होता है—"अतिथि पति"। दुल्हन की कीमत (पत्नी लाने का मोल-जैसा) एक साथ दी जाती है। यह विवाह के पहले तय होती है और लड़की के माँ-बाप को दी जाती है। आदी समाज में यह विश्वास है कि लड़की का घर छोड़ कर जाना परिवार का एक बड़ा नुकसान होता है। दुल्हन की कीमत से इस नुकसान की पूर्ति नहीं होती। लड़की के चले जाने से माँ-बाप को जो आर्थिक नुकसान होता है, उसकी पूर्ति का काम कई वर्षों तक चलता रहता है। इसके फलस्वरूप लड़के और उसके रिश्तेदारों को कई साल तक लड़की के माता-पिता को भेंट के रूप में कुछ वस्तुएँ देना जरूरी है। लड़की के घर एक काम करने वाले व्यक्ति की कमी हो जाती है और लड़के के घर एक काम करने वाला व्यक्ति बढ़ जाता है। इसलिए लड़का अपने समूह के साथ जितनी मछलियाँ पकड़ता है वे सब उसे अपने ससुराल वालों को देनी पड़ती हैं एवं जाल

और बरछी की सहायता से जो मछली पकड़ पाता है उसका भी आधा भाग लड़की के घर भेजना पड़ता है। इसी प्रकार सामूहिक शिकार में लड़के को जो शिकार मिलता है वह भी उसे अपने ससुराल वालों को देना पड़ता है। यहाँ लड़की को यह अधिकार रहता है कि वह शिकार किए जानवर की एक पिछली टाँग अपने पति को रखने की अनुमति दे सकती है।

जब लड़के की बहिन और लड़की के भाई का विवाह एक साथ हो जाता है तो दुल्हन की कीमत और बाद में दी जानी वाली भेंटें सब समाप्त हो जाती हैं। आदी समाज में लड़कियों के साथ पूरा न्याय होता है। वे परिवार पर बोझा नहीं समझी जातीं। वे माँ-बाप के लिए अभिशाप नहीं मानी जातीं। उनकी इच्छा के विरुद्ध उनका विवाह भी नहीं किया जाता है। गालोंग जाति के लोगों में बहुपति विवाह प्रचलित था। अरुणाचल की दूसरी जातियों में यह प्रथा नहीं है। मोंपाओं में इसका थोड़ा बहुत प्रचलन अवश्य था, किन्तु अब उनमें भी यह प्रथा समाप्त होती जा रही है।

"आदी" लोग बाँस और बेंत के बड़े सुन्दर पल बनाते हैं। लम्बे और ऊँचे झूलते पुल इनके इंजीनियरिंग कौशल के नमूने हैं। कहीं-कहीं तो इनकी लम्बाई साढ़े सात सौ फुट तक होती है।

"आदी" लोग अपने इतिहास का भी पूरा ज्ञान रखते हैं। वे बढ़े लोग, जिनकी स्मरण शक्ति अच्छी होती है, अपने पूर्वजों की गाथाओं को गीतों में संजोकर गाते हैं। उत्सवों और अन्य सामाजिक अवसरों पर आबाँग के गीतों में इनकी गाथाओं को सुना जा सकता है। आबाँग के गीतों को समूह का नेता "मीरी" गाता है। सभी लोग इन गाथाओं को सुनकर मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। "मीरी" "न्यीतीम" नाम के लोकगीत भी गाता है। बहुत-सी लड़कियाँ "न्यीतोम" को दुहराती हैं। इस प्रकार इन लोकगीतों में "आदी" जनजाति के ज्ञान और विश्वासों को सुन्दर रूप में देखा जा सकता है।

आदी नृत्य "पोनुंग" अरुणाचल के सुन्दरतम नृत्यों में से एक होता है। यह नृत्य "न्यीतोम" लोकगीत के साथ ही चलता है। आदी विचारधारा मानो पूर्ण रूप से जीवन और प्रकृति से जुड़ी है। प्राकृतिक विपदाओं से संघर्ष करने वाले इनके समाज में बलि देने की प्रथा भी बड़ी बलवती है। इनके समस्त त्योहारों और रिवाजों की पूर्णता बलि देकर ही होती है।

आदी लोग खेती पर अधिक निर्भर रहते हैं। खेती के लिए जंगल साफ हो जाने पर "आरान" त्योहार की शुरुआत होती है। इस त्योहार की प्रसन्नता में पाँच दिन तक लोग खेती के लिए नहीं जाते। इन दिनों केवल प्रकृति के देवी-देवताओं की पूजा और वंदना होती है। इन देवताओं के नाम हैं — दोयिंग-बोते, किने-नाने, और सिडकीन-केडे। इनका विश्वास है कि इस उत्सव को ये देवता देखते हैं। इस त्योहार को देवी की कृपा प्राप्त करने के लिए ही मनाते हैं। गीतों में वे ऐसी मनौती करते हैं। आरान के पश्चात दूसरा प्रसिद्ध त्योहार "मोपिन" का होता है। यह त्योहार प्रमुख रूप से बीज बोने का त्योहार है।

आदि लोगों के जीवन में पालतू जानवरों का भी बहुत महत्व है। इन पशुओं के कुशल-मंगल के लिए वे "लुतर-सोलुंग" नाम का त्योहार मनाते हैं। सभी लोग अपने-अपने मिथुनों को घर के सामने लाकर बाँध देते हैं। मिथुन देखने में भैंस जैसा किन्तु सिधाई में गाय के स्वभाव वाला एक पालतु पशु होता है।

"मोपिन" त्योहार के अवसर पर लोग परस्पर चावल के आटे को गीला करके एक दूसरे के गालों पर मलते हैं, जैसे हम लोग होली के अवसर पर अबीर-गुलाल मलते हैं। यह त्योहार प्रतिवर्ष मार्च-अप्रैल के माह में आता है जिसमें अच्छी फसल होने की कामना की जाती है। अच्छे शकुन को देखकर त्योहार के समय की घोषणा कर दी जाती है। "मोपिन" को एक प्रकार से फसल का देवता मानते हैं। नृत्य, गीत और दावतों से भरा यह त्योहार सभी तरफ खुशियाँ बिखेर देता है। आनंद-विभोर होकर सभी एक दूसरे के साथ मिलजुल कर यह त्योहार मनाते हैं।



चित्र 12: आलोंग में बना दोन्यी-पोलों का भव्य मंदिर

आदी जनजाति के लोग नुकसान पहुँचाने वाली दैवी शक्तियों को संतुष्ट करने के लिए बलि दिया करते हैं। बलि प्राप्त करके दोयिंग आगोंग नाम के देवता उन्हें मानों अच्छी फसल का वरदान देते हैं। उन्हें प्रसन्न रखना आवश्यक होता है। दोयिंग आगोंग का दूसरा नाम "दोयिंग बोते" भी है। आगोंग का अर्थ "मित्र" होता है। इसी प्रकार "केयुम" नाम का भी एक देवता माना जाता है जो पृथ्वी और आसमान से सम्बन्धित है।

भूत-प्रेतों पर प्रतिबंध लगाने वाली दैवी शक्ति को "पेराँग-आने" या "पेदांग-नाने" कहते हैं। आदी लोग "दोन्यी-पोलो" अर्थात् सूर्य-चन्द्रमा की भी पूजा करते हैं और उनसे आर्शीवाद पाने की इच्छा रखते हैं। ये लोग "दोन्यी-पोलो" को संसार की आँखें मानते हैं। उनका विश्वास है कि "दोन्यी-पोलो" दुनिया की सारी गतिविधियों का नियंत्रण करते हैं। आलोंग में दोन्यी-पोलो का एक सुन्दर मंदिर भी है।

6
आपातानी और उनका वैभव

ऊपरी असाम के शहर नार्थ लखीमपुर से जीप द्वारा हम चार घंटे में जीरो पहुँच जाते हैं। यह स्थान लोअर सुबांसिरी जिले का मुख्यालय है। लगभग 4,500 फीट की ऊँचाई पर यह मनोरम पर्वतस्थल आगंतुकों का मन मोह लेता है। यह वही मनमोहक स्थान है जहाँ आपातानी रहते हैं। जीप का रास्ता बनने से पहले यहाँ पहुँचने में कई दिन लग जाते थे। यहाँ पहुँचते ही ऊँचे-ऊँचे देवदार के पेड़, सुन्दर प्रीमरोज, वाओलेट, जंगली करेंट, स्ट्राबेरीज और रासबेरीज के दृश्य आने वाले को आनंद विभोर कर देते हैं। सेब और अलूचे यहाँ बहुत पैदा होते हैं।

लगभग 1,524 मीटर की ऊँचाई पर 26 किलोमीटर तक फैली एक घाटी है। यह सुन्दर घाटी आपातानी लोगों का निवास स्थान है। अपने अथक परिश्रम से आपातानी लोगों ने इसे अपना स्वर्ग बना लिया है। यहाँ चावल की खेती खूब होती है। यह स्थान "चावल का भंडार" है। दस मील लंबा यह पठार इनके परिश्रम और खेती करने की कुशलता का जीता जागता उदाहरण है। काली नदी से इनकी सिंचाई की आवश्यकता पूरी हो जाती है। पाइन के पेड़ इस घाटी की सुन्दरता में चार चाँद लगा देते हैं।

आपातानी लंबे और सुन्दर होते हैं। इनके नाक-नक्श बड़े तीखे होते हैं। पुरुष अपने लंबे बालों को जमा कर सिर के सामने जूड़े में बाँध लेते हैं। किसी आपातानी आदमी को दूर से देखने पर किसी साधु-महात्मा का भ्रम हो जाता है। पुरुष अपने जूड़े के बीच में एक पीतल की छड़ी आड़ी करके लगा लेते हैं। इससे बालों को जूड़े में बाँधने में सहायता मिलती है। ये जूड़े के चारों ओर एक पीला कपड़ा भी बाँध लेते हैं। जूड़े को ये "पोदुम" कहते हैं। ये लोग कमर में बेंत के बेल्ट बाँधते हैं। इस बैल्ट के पीछे एक लटकती हुई पूँछ-सी दिखाई देती है। यह बैल्ट का ही भाग होता है। बेंत का बैल्ट लाल रंग से रंगा होता है। इस पूँछ में बेंत की बनी अंगुलियाँ लगी रहती हैं। जरूरत पड़ने पर ये पूँछ फोल्डिंग सीट का भी काम देती है।

पुरुषों और स्त्रियों के चेहरों पर अलग-अलग तरह की गुदाई होती है। पुरुषों के मुँह के नीचे, नीचे वाले होठ के पास, एक लाइन खिंची रहती है। इसी रेखा से एक सीधी रेखा डाढ़ी तक चली जाती है। औरतों में यह गुदाई ललाट से नाक तक और निचले होंठ से ठोड़ी तक रहती है। आपातानी स्त्रियाँ बुनाई में भी कुशल होती हैं। वे अपना ही बुना नीले बार्डर वाला सुन्दर स्कर्ट पहनती हैं। यह स्कर्ट घुटनों तक आता है। वे जैकेट भी पहनती हैं। स्त्रियाँ अपने बालों को चारों तरफ से समेट कर सिर के बीच जूड़े में बाँध लेती हैं। वे रंगीन मनकों की लड़ियाँ अपने गले में पहनती हैं।

आपातानी बलियाँग

गाँव की व्यवस्थापक समिति को बुलियाँग कहते हैं। गाँव के कुशल लोगों को इसमें शामिल किया जाता है। धनी और प्रभावशाली लोगों का इस पर बड़ा प्रभाव रहता है। बुलियाँग के सदस्य तीन तरह के होते हैं—आका, आजांग और यापा। आका बुलियाँग में समाज के खास लोग होते हैं। ये बुद्धि, अनुभव और उम्र के हिसाब से स्थायी सदस्य होते हैं। आका बुलियाँग एक तरह की खास अदालत होती है। वह लोगों के लड़ाई-झगड़ों का फैसला करती है। इनमें आका बुलियाँग से राय ली जाती है। आका बुलियाँग सलाहकार की भूमिका अदा करती है। आजांग बुलियाँग में जवान और उत्साही सदस्य होते हैं जिनमें नेतागीरी करने की



चित्र 13: आपातानी स्त्री और पुरुष अपनी पारंपरिक वेशभूषा में

क्षमता होती है। वे यापा बुलियाँग के दूत होते हैं। अजांग बुलियाँग का सफल सदस्य यापा बुलियाँग का सदस्य बना दिया जाता है।

बुलियाँग का अधिवेशन गाँव के मंच पर होता है। इस मंच को "लापाँग" कहते हैं। ढ़ीले फैलाये गये तख्तों का यह मंच बड़ा विशाल होता है। यह मंच सामाजिक एकता का भी मंच होता है। यह सांस्कृतिक गतिविधियों का भी केन्द्र होता है। यह गाँव का दिशा-निर्देश करने वाला प्रकाश स्तंभ होता है। लापांग आपातानी जीवन की हलचल का केन्द्र होता है।

त्योहार

वर्षे के विभिन्न भागों में मनाये जाने वाले त्योहारों में हमें आपातानी एकता के दर्शन होते हैं। मोरोम और लोको इनके खास त्योहार होते हैं। लोग इन त्योहारों के आने की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हैं। ये दोनों त्योहार खेती से संबंधित होते हैं। मोरोम चावल की खेती काट लेने पर दिसंबर-जनवरी में सर्दी के दिनों में मनाया जाता है। इस त्योहार के अवसर पर गाँव के युवक पुरोहित के साथ आस-पास के गाँवों में जुलूस निकाल कर जाते हैं। पुरोहित खेतों में शकुन के तौर पर चावल फेंकते हुए जाता है। इस त्योहार पर जवान लड़के और लड़कियाँ खूब नाचते और गाते हैं। चारों ओर आनंद और उल्लास छा जाता है।

वैभव का प्रदर्शन

इस अवसर पर समाज में अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने का स्वर्ण अवसर भी मिलता है। प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले व्यक्ति या परिवार को दो तरह की दावतों का सहारा लेना पड़ता है। आपातानी समाज में इस अवसर पर दी जाने वाली दावतों के नाम हैं—**अन-पेडो** और **पादू-लादू**।

गाँव के लोग धनी लोगों से दावत लेने में बड़े चतुर होते हैं। धनी लोगों पर दावत देने का दबाव डालते हैं। इस तरह की दावत में एक धनी आदमी दूसरे धनी आदमी को चुनौती देता है। यहाँ लोगों का बैंक-बैलेंस तो होता नहीं। जानवर ही उनका धन होता है। मिथुन आदि जानवर तो जंगल में ही घूमते रहते हैं। अतः किसी व्यक्ति के वैभव को सही तरह से इसी अवसर पर आँका जाता है।

"अन-पेडो" दावत बड़ी खर्चीली होती है। जो इस दावत को शुरू करता है वह पाँच-छह मिथुन काट देता है। इसमें सभी आपातानी वेली के लोगों का हिस्सा रहता है। छोटी दावत का नाम है "पादू लादू"। इसमें केवल दो या तीन मिथुन काट कर दावत दी जाती है। दोनों तरह की दावत देने वालों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है और वे सामाजिक स्तर में ऊपरं उठ जाते हैं।

लोकोत्सव मार्च या अप्रैल में पड़ता है। इस त्योहार का संबंध भी खेती से ही होता है। यह बसंत ऋतु का त्योहार माना जाता है। इसमें कई विधि-विधानों का समावेश रहता है। गाँव का पुरोहित कई रस्में अदा करता है और फिर इसका मुहूर्त निकाला जाता है। यह

एक ही मंडल के गाँवों में एक बार मनाया जाता है। इस तरह यह त्योहार बारी-बारी से घूम-घूम कर आता रहता है।

लोको की तैयारियाँ बड़े जोर-शोर से चलती हैं। बलि दिये जाने वाले जानवरों को खरीदा जाता है। दावत में काम आने वाली दूसरी चीजें भी तैयार की जाती हैं। जलाने की लकड़ी भी सभी मिलकर इकट्ठी करते हैं। एक दूसरे को भेंटें भी दी जाती हैं। इससे अलग-अलग गाँवों में परस्पर प्रेम और मित्रता बढ़ती है। एक गाँव के लोग दूसरे गाँव में जाते हैं। उनके साथ मेहमानों जैसा व्यवहार होता है। लोको मेल-मिलाप और सद्भावना का त्योहार है। इस अवसर पर अपने शारीरिक कमाल का प्रदर्शन करने वाले "बो-बो" के खेल में भाग लेते हैं। लंबे-लंबे बाँसों को गाड़कर उन पर बेंत बाँध दिया जाता है। जवान लड़के-लड़कियाँ और दूसरे शौकीन लोग बेंत की रस्सी को खींच कर ऊपर चले जाते हैं और कई तरह के करतब दिखाते हैं। आपातानी समाज में मान्यता प्राप्त सिद्धान्तों को तोड़ने की कोई हिम्मत नहीं करता।

पहले आपातानी समाज में एक रिवाज था। यदि दो गाँवों में रहने वाले व्यक्तियों में कोई झगड़ा हो जाता था और कोई एक गाँव यह समझता था कि उसकी मान-हानि हो गई है तो वह लोको के अवसर पर "गंबू" द्वारा इसका बदला ले लेता था। कभी दो व्यक्तियों के झगड़े में दो गाँव उलझ जाते थे। दोनों में एक तरह का गूंगा-युद्ध शुरू हो जाता था। इतना होने पर एक-दूसरे को "गंबू सोडू" की चुनौती देते थे। दो गाँवों के बीच में होने वाले युद्ध को "गंबू सोडू" कहते हैं। इसके भी नियम होते थे। युद्ध की जगह भी निश्चित कर दी जाती थी। संबंधित दोनों व्यक्ति आपस में नहीं झगड़ते थे। धनुष-बाण, भाले और तलवार लेकर दोनों गाँवों के प्रतिनिधि लड़ते थे। इसमें दूर तक भाला फेंकने और तीरों के चलाने का कमाल दिखाया जाता था। यह लड़ाई बहुत देर नहीं चलती थी। किसी के घायल हो जाने पर यह लड़ाई बंद हो जाती थी। यदि किसी लड़ाकू की मृत्यु हो जाती थी तो जिसकी तरफ से वह लड़ा था, उस गाँव के लोग मृतक के परिवार को मुआवजा देते थे। अंग्रेजी ड्यूल की तरह आपातानी गंबू एक शानदार प्रथा थी जिसका अब लोप होता जा रहा है। इसमें दोनों ओर से फेंके जाने वाले भाले और चलाए जाने वाले तीरों की संख्या लड़ाई के पहले ही निश्चित कर ली जाती थी। इस नियम का पूरी ईमानदारी से दोनों दल पालन करते थे। गंबू मान-हानि के निराकरण का धर्म-युद्ध होता था।

वैभव प्रदर्शन की प्रथा "लिसूडू" में निहित है। इस प्रदर्शन में आपातानी वैभव की झलक मिलती है। इस तरह की प्रथा अरुणाचल की किसी और जाति में नहीं मिलती। उत्तरी-पश्चिमी अमेरिका की एक जाति "वाकिउत इन्डियंस" में इस तरह की प्रथा है। केवल एक संपन्न आपातानी ही वैभव प्रदर्शन की इस प्रथा में भाग ले सकता है।

"लिसूडू" आरंभ करने वाला व्यक्ति अपने मान और शान पर लगाए गए धब्बे को मिटाने के लिए अपनी प्रतिपक्षी को चुनौती देता है। इस चुनौती में वह अपने घर के सामने दो-तीन मिथुन काट कर रख देता है। प्रतिपक्षी दल इस चुनौती को समझ कर इससे भी अधिक मिथुन काटकर अपने घर के सामने रख देता है। लिसूडू करने वाले लोग इस माँस को गाँववालों के लिए छोड़ देते हैं। वे इसका थोड़ा-सा भी भाग नहीं लेते। प्रतिभागियों के रिश्तेदार भी इसमें अपने संबंधी की तरफ से उलझ जाते हैं। जब बात बढ़ती जाती है तो कटने वाले मिथुनों और जानवरों की संख्या भी बढ़ती जाती है। इस वैभव प्रदर्शन की प्रक्रिया में गाँव के गरीब लोगों की मानो प्रोटीन की कमी दूर हो जाती है। इस वैभव प्रदर्शन की विनाश-लीला में दूसरी अमूल्य चीजों की आहुति भी आरंभ हो जाती है। इस प्रतियोगिता में जो अंत तक खड़ा रह सकता है वह हार जाने वाले व्यक्ति की सभी चल और अचल संपत्ति का मालिक बन जाता है। वैभव प्रदर्शन की यह विनाश लीला अब समाप्त हो रही है। वैसे लिसूडू को बुलियाँग वाले मध्य में रोकने का भरसक प्रयत्न करते हैं। वे इस वैभव प्रदर्शन को विनाश के स्तर पर जाने के पहले ही रोक देते हैं। इस प्रथा का केवल एक ही लाभ था। आवश्यकता से अधिक संपत्ति वैभव प्रदर्शन की आड़ में गाँव के गरीबों में बँट जाती थी। समाज का संतुलन बना रहता था। धनी और गरीब के बीच बढ़ती खाई पट जाती थी।

श्रम विभाजन

आपातानी समाज की एक दूसरी विशेषता है—श्रम का विभाजन। ये खेती करने में बड़े चतुर होते हैं। ये लोग चावल के खेत में मछलियाँ भी पाल लेते हैं। ये अपने सीमित साधनों का उपयोग बड़ी चतुराई से करते हैं। पुरुष अधिक मेहनत का काम करते हैं। सिंचाई के लिए नहरें बनाना, बाँध बनाना, टेरेस बनाना, मिट्टी हटाना तथा पेड़ लगाना पुरुषों के काम हैं। स्त्रियाँ नर्सरी और बगीचों की देखरेख करती हैं। खेतों में धान लगाना स्त्रियों का काम होता है।

गाँव के लड़के और लड़कियाँ मिलकर काम करने के लिए श्रम-संगठन बना लेते हैं। इसे "पातांग" कहते हैं। पातांग के सदस्य खेती के कामों में और दूसरे कामों में सहायता देते हैं। बड़े होकर विवाह हो जाने पर वे पातांग की सदस्यता छोड़ देते हैं। इस तरह का श्रम-संगठन अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। आपातानी समाज में यह श्रम-व्यवस्था बड़ी ही सराहनीय है।

7

साहसिक जीवन के धनी टगीन

सुबांसिरी जिले के ऊपरी भाग में पहुँचने के लिए पूरे दिन का सफर करना पड़ता है। लीकाबाली से सुबह रवाना होकर रात नौ बजे हम दापोरिजो पहुँचते हैं। "दापोरिजो" इस जिले का मुख्यालय है। रास्ता लम्बा जरूर है, पर सड़क बहुत अच्छी होने के कारण आसान भी है। हम "जीरो" होकर भी दापोरिजो पहुँच सकते हैं।

अरुणाचल प्रदेश के इस उत्तरी भाग में टगीन जनजाति के लोग रहते हैं। दुर्गम मार्ग, निर्जन स्थान और जीवन की अन्य कठिनाइयों से इन्हें निरंतर जूझना पड़ता है। "दापोरिजो" इस जनजाति का मुख्य आवास स्थान है।

खेती से टगीन जनजाति के लोगों का कोई वास्ता नहीं रहा। अतः भोजन प्राप्त करने के लिए इन्हें बड़ी असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। अब सरकार इस जनजाति के लोगों के चहुमुखी विकास पर विशेष ध्यान दे रही है। पहले इन्हें "डफला" जनजाति के लोगों के समकक्ष मानकर "डफलाटगीन" कहा जाता था, किन्तु सुबांसिरी जिले के उत्तर-पूर्व में रहने वाले ये लोग एक अलग जनजाति के हैं। कमला नदी के ऊपरी भाग, "तलिहा" जैसे दूर-दराज के प्रशासनिक केन्द्र और "लिमेकिंग" में ये लोग बहुतायत से रहते हैं। थोड़ी बहुत समानता होते हुए भी ये लोग "आदी" और "निशी" जनजाति के लोगों से भिन्न हैं। ये लोग कई देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। इनका प्रमुख देवता "देइनीपोल" है जबकि "आदी" लोगों के देवता का नाम "दोयनी पोलो" है। "आदी" लोगों की भाँति इनके सामाजिक और राजनैतिक संगठन मजबूत नहीं है। ये लोग दूर-दूर बिखरे हुए गाँवों में रहते हैं। इनके गाँव प्रायः पहाड़ों की ढलानों पर स्थित होते हैं। गाँवों के बिखरे होने तथा एक-एक गाँव में थोड़े-थोड़े परिवार के रहने के कारण दुश्मनों के अचानक हमला कर देने पर ये लोग अपना और अपनी जाति का बचाव कर लेते हैं। पहले एक उप-जनजाति के लोग एक ही गाँव में रहा करते थे, किन्तु अब ऐसा नहीं है।

इनके घरों की बनावट "निशी" और "आपातानी" लोगों के घरों की तरह ही होती है किन्तु इनके घर ढलानों पर स्थित होने के कारण ज़मीन के ऊपरी हिस्से में कम ऊँचे और

नीचे के हिस्से में अधिक ऊँचे होते हैं। घर के एक तरफ दो-तीन दरवाजे भी होते हैं। इनके घर में कोई बड़ा कमरा नहीं होता, पूरा घर छोटे-छोटे कमरों में बँटा रहता है। इन कमरों में जाने के लिए एक ही दरवाजा होता है। घर प्रायः जंगलों से प्राप्त होने वाली लकड़ी, बाँस, बल्ली और घास-फूँस से ही बनाए जाते हैं।

टगीन जनजाति का परिवार एक संयुक्त परिवार होता है। यहाँ तक कि निकट के नाते-रिश्ते वाले लोग भी एक से संयुक्त परिवार के सदस्य के रूप में ही रहते हैं। इन लोगों में बहु-विवाह की प्रथा है, अतः एक से अधिक पत्नियों के कारण कभी-कभी घरों में कलह भी होती रहती है। विवाह के बाद पत्नी अपने पति की जाति में ही गिनी जाती है। उम्र के हिसाब से सबसे ज्येष्ठ व्यक्ति इनके संयुक्त-परिवार का मुखिया होता है।

टगीन लोग कपड़ों के ज्यादा शौकीन नहीं होते। कपड़े बुनने की कला में ये लोग अन्य जनजातियों की तुलना में कम प्रवीण होते हैं। "एण्डी" और "कम्बल" ही इनकी कपड़ों की जरूरत पूरी कर देते हैं। ये लोग इन वस्त्रों की कीमत जानवरों को देकर चुकाते हैं।

टगीन स्त्रियाँ कम्बल इस्तेमाल करती हैं। सफेद धारीदार सूती कंबल इन्हें बहुत अच्छे लगते हैं। कुवाँरी लड़कियाँ ऊनी टोपी लगाना बहुत पसंद करती हैं। अधोवस्त्र के रूप में स्त्रियाँ "बेकर" (घास से बना एक प्रकार का घेरदार स्कर्ट) पहनती हैं। लेकिन अब बेकर पहनने का रिवाज कम होता जा रहा है। आजकल फल के प्रिण्ट वाली साड़ियाँ काट-काट कर स्त्री-पुरुष दोनों ही लुंगी के रूप में पहनने लगे हैं।

टगीन लोग अपने सिर पर बैंत का बना हैट पहनते हैं, जिसे ये अपनी भाषा में "बोतुंग" कहते हैं। कभी-कभी ये लोग मिथुन या हिरन के चमड़े का बना हैट भी पहनते हैं। हैट के पीछे की ओर चमड़े का एक टुकड़ा लगा रहता है जो गर्दन के पीछे झूलता रहता है और सुरक्षा की दृष्टि से गर्दन को ढके रहता है। किसी दुश्मन द्वारा अचानक पीछे से तलवार का वार होने पर आदमी गर्दन कटने से बच जाता है।

टगीन जनजाति के लोग बालों को सिर के ऊपर जूड़े की तरह नहीं बाँधते। वे अपने केशों को पूरी लम्बाई तक खुला रखते हैं और अपने बालों को बढ़ने देना बहुत पसंद करते हैं। "पालिबो" और "बोरी" जनजाति की भाँति ही ये लोग लम्बे बालों को सुन्दरता का प्रतीक मानते हैं, यद्यपि बालों को सँवारने की कला में ये लोग बहुत निपुण नहीं होते। ये लोग अपने छोटे बच्चों को लम्बे बाल नहीं रखने देते। उनके बाल केवल सिर के आगे के भाग में ही थोड़े बड़े रहते हैं।

टगीन पुरुष और स्त्रियाँ — दोनों ही रंग-बिरंगे मनकों की मालाएँ बड़े चाव से गले में पहनते हैं। सफेद मनके अधिक पसंद किए जाते हैं। नीले और गहरे नीले रंग के मनके दूसरे नंबर पर आते हैं। छोटे बच्चों के कानों में हिरन के बालों से बने कर्णफूल पहनाए जाते हैं। स्त्रियाँ अपने कानों में धातु के बने कर्णफूल पहनती हैं। ये कर्णफूल कभी-कभी चाँदी के भी



चित्र 14: टगीन लोगों का सामूहिक नृत्य

बने होते हैं। सभी उम्र की स्त्रियाँ धातु की बनी चूड़ियाँ पहनना पसंद करती हैं। यह धातु ताँबे की तरह की होती है जिसकी बनी चूड़ियाँ बड़ी कीमती मानी जाती है। इन्हें खुशी के खास अवसरों पर नाचते समय पहनने का रिवाज है।

वयोवृद्ध टगीन और योद्धा अपने दाहिने हाथ में बेंत से बना लगभग एक फुट लम्बा स्प्रिंग जैसा छल्ला पहनते हैं। योद्धाओं की साज-सज्जा के साथ-साथ यह छल्ला तलवार के वार से भी इनके हाथ को काटने से बचाता है। पुरुष और स्त्रियाँ कमर में बेंत का "कंदोरा" पहनती हैं। ऐसा ही "कंदोरा" निशी, आपातानी और मीरी लोग भी पहनते हैं। पुरुष इस कंदोरे के ऊपर कौड़ियों से विभूषित बैल्ट भी बाँधते हैं। यह पुरुषों की कीमती वस्तु समझी जाती है। हर पुरुष का यह प्रयत्न रहता है कि वह इस तरह का बैल्ट अपने पास रखे। अपने गाँव से बाहर जाते समय इस बैल्ट को पहनकर जाना गौरव की बात मानी जाती है। इस बैल्ट को इनकी भाषा में "तायेन" कहते हैं। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी कमर में धातु की बनी पतली चपटी प्लेटें पहनती हैं जो बैल्ट में लटकती रहती हैं।

खेत में काम करते समय पुरुष एवं स्त्रियाँ अपनी बैल्ट में "माह" (एक प्रकार की छोटी सिगड़ी) लटकाए रहते हैं जिसमें जलती हुई आग से धुआँ निकलता रहता है। यह धुआँ इनके शरीर की विषैले मच्छरों के काटने से रक्षा करता है। सिगड़ी की आग से आवश्यकता पड़ने पर ये लोग अपना पाइप भी जला लेते हैं क्योंकि तम्बाकू पीने का इन्हें बहुत शौक होता है। पाइप को ये लोग 'वेदू' कहते हैं। खेत में काम करते-करते पाइप पीना इन्हें स्फूर्ति देता है। इसी प्रकार खेत में काम करते हुए पुरुष अपनी बेल्ट में चमड़े का पोच लटकाए रहते हैं। इस पोच में तम्बाकू रखी रहती है तथा थकान हो जाने पर यह बैठने के काम में भी आता है।

कपड़ों की कमी के समान ही यहाँ भोजन की कमी भी रहती है। कृषि से केवल दो माह के भोजन की व्यवस्था लायक अनाज ही जुट पाता है। शेष महीनों के भोजन की व्यवस्था के लिए इन्हें दूर-दूर तक फैले जंगल के फलों और कंद-मूलों तथा पशुओं के शिकार पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ये लोग शिकार करने के लिए विष के बुझे वाणों का प्रयोग करते हैं। इस प्रकार उपजाऊ भूमि का अभाव इनके जीवन के लिए एक बड़ी चुनौती बना हुआ है जिसका यह लोग हँसते-हँसते मुकाबला करते हैं। अपनी इस "झूम-खेती" से जो थोड़ा-बहुत चावल और मकई इन्हें प्राप्त होता है, उससे ही ये अपना काम चलाते हैं। कभी-कभी मिर्च, अदरक, प्याज, बीन, बैंगन और कुछ अन्य सब्जियाँ भी ये लोग इन खेतों में उगा लेते हैं। ये लोग अपने लिए तम्बाकू (दू) भी पैदा करते हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि "टगीन" लोग अधिकाधिक आत्मनिर्भर होते हैं।

टगीन जनजाति के लोग भूमि नहीं बेचते। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से भूमि के देवता "गिडावारु" नाराज हो जाते हैं। यदि इनके गाँव में अन्य कोई परिवार आकर बस

जाता है तो ये लोग उसे घर बनाने के लिए जमीन मुफ्त में दे देते हैं। धीरे-धीरे वह व्यक्ति गाँव का एक सदस्य बन जाता है। यदि गाँव में खेती-योग्य अच्छी जमीन नहीं होती तो जंगल का थोड़ा हिस्सा उसे दे दिया जाता है, जिसे साफ करके वह खेती-योग्य जमीन बना लेता है।

टगीन समाज में विवाह माँ-बाप के द्वारा बातचीत करके तय किए जाते हैं। शादी-विवाह के मामले में लड़की और लड़के के पिता किसी मध्यस्थ व्यक्ति का सहयोग लेते हैं। मध्यस्थ व्यक्ति ही लड़की के पिता के लिए "दुल्हन का मोल" तय कराता है। लड़कों का विवाह सोलह-सत्रह वर्ष तथा लड़की का विवाह चौदह-पन्द्रह वर्ष की उम्र में कर दिया जाता है। धनी व्यक्ति, जो एकाधिक बार "दुल्हन का मोल" दे सकते हैं, एक से अधिक विवाह भी कर लेते हैं। विवाह के बाद एक उत्सव होता है जिसे "यूलो" कहते हैं। अधिकांशतः लोग एक ही विवाह से संतुष्ट रहते हैं। मामा और बुआ की संतानों का विवाह बहुत शुभ माना जाता है। पिता की मृत्यु हो जाने पर पुत्र को सभी विमाताएँ विरासत के रूप में मिल जाती हैं।

टगीन जनजाति के लोग "दयनी-पोल" (सूर्य-चन्द्रमा) को सबसे बड़ी शक्ति और ईश्वर के रूप में मानते हैं। उनका विश्वास है कि ये देवता ही मनुष्यों का कल्याण करते हैं। दयनी (सूर्य) के नाम पर खाई गई कसम कभी तोड़ी नहीं जाती। उनका विश्वास है कि "दयनी" बच्चे का भाग्य बनाता है। उनकी धारणा है कि यदि केवल पोल (चन्द्रमा) बच्चे का भाग्य लिखता है तो बच्चा जल्दी मर जाता है। ये लोग दयनी (सूर्य) को स्त्री और पोल (चन्द्रमा) को पुरुष मानते हैं। इनके समाज में नीबू (पुरोहित) दयनीपोल द्वारा लिखे भाग्य का विश्लेषण करता है, जिसे वह बाँस की प्लेट पर अंकित कर देता है।

टगीन जनजाति के लोग मृतक को अपने परिवार और घर के आस-पास की भूमि में ही दफनाते हैं। उनकी धारणा है कि ऐसा करने से मरने के बाद भी व्यक्ति घर-परिवार के लोगों के साथ रहता है।

8

नृत्य-प्रेमी शेरडुकपेन



चित्र 15: शेरडुकपेन लोगों के घर : एक नमूना

शेरडुकपेन भी अरुणाचल प्रदेश की एक जनजाति का नाम है। ये लोग मोम्पा जनजाति के लोगों के पड़ोसी हैं। बमदीला कामेंग जिले का मुख्यालय है। बालीपाड़ा रेलवे-स्टेशन से आठ घंटे के बस सफर से हम बमदीला पहुँच सकते हैं। यहाँ के पहाड़ों की ऊँचाई और वातावरण की शीतलता मन को मोह लेती है। यहाँ मानो सर्दी का साम्राज्य है, वर्ष के आठ माह आग के सहारे बिताने पड़ते हैं।

शेरडुकपेन जनजाति के लोगों से हम रूपा, जिगाँव और शेरगाँव में मिल सकते हैं। ये लोग बड़े स्वाभिमानी और आत्म-निर्भर होते हैं। ये बौद्ध-धर्म को थोड़े परिवर्तन के साथ मानते हैं। इस क्षेत्र की ऊँचाई पन्द्रह सौ से दो हजार मीटर तक है।

इनके घर लगभग एक-डेढ़ मीटर ऊँचे पत्थरों से बने चबूतरों पर बने होते हैं। चबूतरों पर तख्तों का फर्श होता है। घर के ऊपर का हिस्सा बाँस का बना हुआ होता है। घर के निचले भाग में पालतू जानवर रहते हैं। ये लोग घर बनाते समय कई सुविधाओं का ध्यान रखते हैं। घरों में खिड़कियाँ न होने से अँधेरा-अँधेरा सा बना रहता है।

पुरुषों के पहनने के वस्त्र को "सापो" कहते हैं। इस वस्त्र से शरीर का ऊपरी भाग दोनों ओर ढँक जाता है। ये लोग वस्त्र के ऊपरी भाग को कंधों पर बाँध लेते हैं। "सापो" के ऊपर ये लोग पूरी बाहों का जाकेट पहनते हैं। सर्दी में पाँवों में पायजामे की तरह का एक ढीला-सा वस्त्र पहने रहते हैं। इस प्रकार शेरडुकपेन लोगों की कोई पूरी वेश-भूषा नहीं है।

स्त्रियाँ बिना बाँह की कमीज पहनती हैं, जो घुटनों तक लम्बी होती है। वे कभी-कभी पूरी बाँह का कोट भी पहनती हैं। स्त्रियाँ बुनाई में बड़ी चतुर होती हैं। उनके करघे खुलने वाले और बड़े हल्के होते हैं। इस करघे को सरलता से एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है। शेरडुकपेन स्त्रियाँ असम से सूत खरीद कर लाती हैं और कपड़ा बुनती हैं। कभी-कभी वे स्वयं भी सूत तैयार करती हैं। इस प्रकार ये अपने अभाव-ग्रस्त जीवन को थोड़ा-बहुत आत्मनिर्भर बना लेती हैं।

सूत की कमी को होंगचांग और होंगचो नाम के दो पौधों के रेशों से भी ये लोग पूरा कर लेते हैं। पहले इन पौधों की छाल को उबलते पानी में भिगो देते हैं। इस प्रकार उसे कई बार धोते हैं। जब वह काफी नरम हो जाता है तब उसमें से धागे खींचे जाते हैं। ये पौधे जहरीले होते हैं, अतः स्त्रियाँ धागे खींचते समय हाथों पर मोटे कपड़े लपेट लेती हैं। सूत प्राप्त करने के इस कौशल के साथ-साथ ये लोग धातु और लकड़ी के काम में भी बड़े निपुण होते हैं।

शेरडुकपेन समाज में तीन वर्ग हैं — थोंग, छाओ और यानलो। थोंग लोगों का सामाजिक स्तर कुछ ऊँचा होता है, यद्यपि काम-काज और दैनिक जीवन में यह अन्तर



चित्र 16: शेरजुकपेन युवक

दिखाई नहीं देता। सब एक साथ मिलते हैं, खाते-पीते हैं और नाचते-गाते हैं। थोंग शव को नहीं छूते। यह काम छाओ वर्ग के लोग करते हैं।

विवाह योग्य लड़के लड़कियाँ रात को अपने-अपने घरों में नहीं सोते। युवक और युवतियाँ अलग-अलग घरों में अपने-अपने ग्रुप में सोते हैं। अपने आगामी जीवन की योजना वे इन्हीं घरों में बनाते हैं। अरुणाचल की कई जातियों में यह प्रथा आज भी प्रचलित है।

युवक और युवतियों के प्रेमपूर्ण और भावुकतापूर्ण रिश्ते इसी समय बनना प्रारम्भ हो जाते हैं, जो आगे चलकर सगाई और विवाह में बदल जाते हैं। जब किसी युवक और युवती में प्रेम हो जाता है तब वे अपनी तलवार रखने की म्यान को बदल लेते हैं। यह संकेत समाज से सम्मान और मान्यता प्राप्त कराता है। दोनों का विवाह हो जाता है। इस प्रकार, के विवाह में लड़के को कोई "पत्नी मोल" नहीं चुकाना पड़ता। सामान्यतः यहाँ वर पक्ष वधु पक्ष को वधु प्राप्त करने के बदले कुछ सम्पत्ति देता है। इस कारण देश के अन्य सभ्य और दहेज प्रथा वाले समाज की भाँति यहाँ लड़की का जन्म बोझ नहीं माना जाता।

विधवा-विवाह इनके समाज में एक आम बात है। इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त है। कोई ऐसे विवाह पर उँगली नहीं उठाता। पत्नी के मरने के बाद लोग उसकी छोटी बहिन से भी विवाह कर लेते हैं। बिना विवाह किए किसी को रखैल बनाकर रखना एक सामाजिक अपराध है। बड़े भाई की मृत्यु के पश्चात छोटे भाई को, यदि वह अविवाहित है, उसकी विधवा से विवाह करना पड़ता है। ऐसे विवाह में दुल्हन का मोल देने या विवाह के अन्य नियमों का पालन नहीं करना पड़ता। इस प्रकार विधवाओं के टूटते हुए जीवन को सहारा मिल जाता है। विचारों और आचरण में पहाड़ों पर रहने वाली ये गरीब जातियाँ बड़ी श्रेष्ठ होती हैं। यहाँ मैदानी इलाकों के अपराधी भावना वाले जैसे लोग नहीं दिखते।

शेरडुकपेन समाज प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित हैं। ये अपना शासन आप ही करते हैं। गाँव की व्यवस्था देखने के लिए एक ग्राम-समिति होती है जिसे "जंग" कहते हैं। गाँव का प्रमुख ही इस 'जंग' का प्रधान होता है। यह प्रधान "गाँव-बूढ़ा" कहलाता है। गाँव-बूढ़ा ग्राम-समिति में सरकार का प्रतिनिधित्व भी करता है। समिति का चुनाव गाँव वाले करते हैं। यह समिति आपसी झगड़े, चोरी, सम्पति के बँटवारे के झगड़े, अनैतिक एवं समाज विरोधी समस्याओं का फैसला करती है। यह फैसला सब को मान्य भी होता है।

एक प्रकार से बौद्ध-धर्म ही इस जन-जाति का धर्म बन गया है। इन्होंने अपने विश्वासों और विचारों को बौद्ध-धर्म में मिलाकर उसे अपने योग्य बना लिया है। यह धर्म मोम्पाओं के धर्म से भी बहुत-कुछ मिलता-जुलता है। गोम्पा (बुद्ध-मंदिर) यहाँ भी देखे जा सकते हैं। गाँव का पुरोहित प्रभावशाली व्यक्ति होता है। भूतप्रेतों में लोग विश्वास करते हैं। पुरोहित यही चाहता है कि लोग भूतप्रेतों को मानते रहें ताकि उसका अपना प्रभाव भी समाज पर बना रहे। शिक्षित वर्ग पर पुरोहित का प्रभाव कम होता जा रहा है।

शेरडुकपेन स्थाई और अस्थाई रूपों में खेती भी करते हैं। खेत प्रायः पथरीले होते हैं। उनमें मिट्टी की कमी होती है। इस कारण अधिक परिश्रम करने पर भी अच्छी उपज नहीं होती। कहीं-कहीं खेतों में हल-बैल भी देखने को मिल जाते हैं। प्राकृतिक असुविधाओं के कारण अच्छे भोजन का अभाव बना रहता है। ये लोग अपनी स्थिति को अच्छा बनाने के

लिए व्यापार का भी सहारा लेते हैं। सरकारी योजनाओं से इनके जीवन-स्तर में अब धीरे-धीरे सुधार हो रहा है और ये लोग अधिक आत्मनिर्भर होते जा रहे हैं।

शेरडुकपेन लोगों के भोजन में अनाज, मछली और सब्जियों का प्रमुख स्थान है। मकई और ज्वार-बाजरे से बनाई गई बियर इनका प्रिय और पौष्टिक पेय है जो थोड़ा नशीला भी होता है। ये लोग मेहमानों को भी यह पेय बड़े चाव से पिलाते हैं। यह पेय थकान दूर करता है एवं स्फूर्ति प्रदान करता है। दूध और दूध से बने पदार्थ भी इनके प्रिय खाद्य हैं। सर्दी की अधिकता और व्यापार करके कुछ कमाने की दृष्टि से ये लोग दिसंबर से मार्च के मध्य तक खेती न करके दोईमारा (असम) के मैदानी भागों में नीचे चले आते हैं।

नृत्य और नृत्यगीतों का आयोजन शेरडुकपेन जनजाति के जीवन का एक अभिन्न अंग है। विभिन्न नृत्यों में इनकी संस्कृति का दर्शन हम कर सकते हैं। मानव-जीवन के क्रमिक विकास की झलक भी इन नृत्यों में मिलती है।

इनके हिरन-नृत्य (Dear Dance) अजिलामु नृत्य तथा चील-नृत्य (Eagle Dance) बड़े ही निराले होते हैं। ये नृत्य मन को मोह लेते हैं। समय-समय पर आयोजित होने वाले ये नृत्य इनके जीवन में खुशियाँ भर देते हैं। इन नृत्यों में अनेक कामनाएँ की जाती हैं, जैसे देवता प्रसन्न रहें, घर-घर में खुशियाँ आएँ, बीमारी दूर हो, खेती अच्छी हो, पशु तन्दुरुस्त रहें... आदि।

इनके पराक्रम और पौरुष की झाँकी भी इन नृत्यों में देखने को मिलती है। इन नृत्यों के आनंदभाव को देखकर सामान्यतः ऐसा जान पड़ता है कि शेरडुकपेन जनजाति का जीवन कभी अभावग्रस्त नहीं रहा है। नृत्य इनका जीवन है। कठोर जीवन की चुनौतियों का सामना करने के लिए नृत्य महामंत्र सिद्ध होते हैं। ये नृत्य इनके गतिशील, जुझारु और सामाजिक जीवन की एकता के सूत्रधार होते हैं।

9
मोन्पा : निचले प्रदेश के रहने वाले

पश्चिमी कामेंग के मुख्यालय से पूरे दिन के सफर के बाद हम तवांग पहुँचते हैं। तवांग इस क्षेत्र का मुख्यालय है। 3,500 मीटर से भी अधिक ऊँचाई पर बसा हुआ यह भारत का अत्यधिक ठंडा, पर मनोरम पहाड़ी स्थान है। तवांग का गोंपा एक नगर की तरह है। यह प्रसिद्ध गोंपा तवांग की शोभा में चार चाँद लगा देता है। यहीं भारत, तिब्बत और भूटान की सीमाएँ भी मिलती हैं।

तवांग और पश्चिमी कामेंग जिले में मोन्पा लोग रहते हैं। ये लोग स्वभाव से बहुत विनम्र होते हैं। परिश्रमी भी कम नहीं होते। ये लोग उत्तरी बमदीला की बर्फीली घाटियों में 4,267 मीटर की ऊँचाई तक रहते हैं।

यहाँ के लोग बौद्ध धर्म को मानते हैं। ये लोग बौद्ध धर्म की महायान शाखा के अनुयायी हैं पर बौद्ध धर्म को इन्होंने नए रूप में अपनाया है। तवांग के बुद्ध विहार गोंपा कहलाते हैं। इन गोंपाओं में यहाँ के निवासियों का धार्मिक और सांस्कृतिक जीवन व्यतीत होता है। मोन्पा का अर्थ होता है—निचले देश के रहने वाले लोग। ये लोग भेड़ें खूब पालते हैं। भेड़ों से मिलने वाली ऊन सर्दी में इनकी रक्षा करती है। पुरुष शुद्ध लाल ऊन से बना "चूबा" और एक खास तरह का टोप पहनते हैं। सर्दी से बचने के लिए ये भारी ऊनी बूट भी पहनते हैं जो घुटने-घुटने तक ऊँचे होते हैं। ये लोग लकड़ी की म्यान में सजी एक छोटी-सी तलवार भी प्रायः अपने साथ रखते हैं।

मोन्पा स्त्रियों की वेशभूषा भी बड़ी आकर्षक होती हैं। ये अपने बदन पर नीला सूती या धारीवाला कपड़ा लपेटे रहती हैं। यह कपड़ा घुटनों तक लटकता रहता है। पुरुषों के "चूबा" की तरह स्त्रियाँ ऊन का जैकेट पहनती हैं, जो कमर तक आता है। स्त्रियाँ लंबे-लंबे बाल रखती हैं और सिर पर गोल टोपी पहनती हैं।

इनके जीवन की गतिविधियों पर लामा का बड़ा प्रभाव होता है। अपने धर्म में ये बड़ी आस्था रखते हैं। "ओम मणि पद्मे हुँ" का चिरंतन संगीत इन्हें विशेष शांति देता है और आध्यात्मिक ऊँचाइयों तक पहुँचा देता है।



चित्र 17: मोन्पा स्त्री और पुरुष अपनी पारंपरिक वेशभूषा में

ये लोग अच्छे किसान भी होते हैं। ये खेती में खाद का प्रयोग करते हैं। ये पुरानी तरह की अस्थाई खेती और आधुनिक तरह की स्थाई खेती भी करते हैं। अस्थाई खेती को झूम खेती कहते हैं। झूम खेती के लिए ये लोग जंगल काट कर सुखा लेते हैं और फिर उसमें आग लगा देते हैं। इस तरह की खेती ये बरसों से करते आ रहे हैं। ये अपने उपयोग के लिए जौ, मकई, गेहूँ, मटर, बीन, ज्वार तथा मिर्च, प्याज, लहसुन, मूली और कद्दू उगा लेते हैं। जहाँ संभव होता है वहाँ सिंचाई की सहायता से चावल भी पैदा कर लेते हैं। सेला के दक्षिणी भाग में एक खास तरह के हल का प्रयोग भी किया जाता है। ये लोग मिर्च का व्यापार करते हैं। कामेङ के सेब पूरे भारत में प्रसिद्ध हैं।

ये लोग बड़े कुशल बुनकर भी होते हैं। अपने वस्त्र स्वयं बुनते-बनाते हैं। दूसरों पर निर्भर रहना इन्होंने सीखा ही नहीं है। मोन्पा स्त्रियाँ बड़े सुन्दर गलीचे बनाती हैं। इनकी ड्रेगन-डिजायन का गलीचा बहुत ही आकर्षक होता है। नृत्य इनके जीवन का अभिन्न अंग है। कई तरह के धार्मिक नृत्य यहाँ होते रहते हैं। नृत्य में ये लोग लकड़ी के बने मुखौटों का प्रयोग करते हैं। ये मुखौटे आदमी और जानवरों की शक्ल के बनाए जाते हैं।

आजकल मोन्पा लोग एक ही विवाह करते हैं। 30 साल पहले एक पति और एक पत्नी का कोई बंधन नहीं हुआ करता था। जब पुरुष दो पत्नियों को रख सकता था तब स्त्रियाँ भी दो या दो से अधिक पति रख सकती थीं। औरतों का मान यहाँ सदा से होता आया है।



चित्र 18: हाथकरघे पर बुनाई का काम करती हुई महिलाएँ



चित्र 19: मोन्पा लोगों द्वारा बनाए गए लकड़ी के कुछ मुखौटे

"मेन", "चोरटेन" और "गोंपा" इनके विचारों और विश्वासों के प्रतीक हैं। "मेन" तीन-चार मीटर लंबी और आधा मीटर चौड़ी एक दीवार होती है। इस दीवार पर इनका पवित्र मंत्र "ओम मणि पद्मे हूँ" लिखा रहता है। यह मंत्र मेन के पत्थरों पर भी लिखा रहता है। कुछ पत्थरों पर ये सुन्दर कमल का फूल और बुद्ध की प्रतिमा बनाते हैं। इनकी यह मान्यता है कि इनके रहते प्रेतात्माएँ मनुष्यों को नुकसान नहीं पहुँचा सकतीं। कछ लोग अपने जीवन काल में यह "मेन" बनाते हैं। धनी लोगों के मरने पर उनकी याद में भी मेन बनाई जाती है। पैदल चलने वाले लोग मेन को सदा दाईं ओर रख कर चलते हैं।

"चोरटन" स्तूप की शक्ल का बना होता है। यहाँ कभी-कभी प्रार्थना का आयोजन किया जाता है। लामा इन प्रार्थनाओं का आयोजन करता है। उपस्थित लोग तीन बार पूजा-स्थल की परिक्रमा करते हैं।

"गोंपा" इनका मंदिर होता है। इसमें भगवान बुद्ध की एक विशाल प्रतिमा है। धार्मिक पुस्तकों की भी यहाँ कमी नहीं रहती। ये पुस्तकें "पाली" भाषा में लिखी मिलती हैं। इनकी लिपि भी पाली है। इस क्षेत्र में पाली का अमूल्य साहित्य उपलब्ध है। शोध करने वालों के लिए यहाँ बहुमूल्य भंडार विद्यमान हैं। गोंपा में प्रार्थना की झंडियाँ बड़ी ऊँचाई पर फहराती रहती हैं। लोग इन्हें दूर से ही देख सकते हैं। इनके दर्शन से इन्हें आध्यात्मिक ऊँचाइयों का अनुभव होता है। प्रार्थना-चक्र यहाँ सदा चलता रहता है। मोन्पा लोग तेज बहने वाले पहाड़ी नालों पर यह पहिया बड़ी खूबी से लगा देते हैं। बहते हुए पानी से ये चक्र सदा चलते रहते हैं। इस पर कई बार "ओम मणि पद्मे हुँ" लिखा रहता है। उनकी मान्यता है कि यह मंत्र जितनी अधिक बार दोहराते हैं उतना ही अधिक कल्याण होता है।

लड़के-लड़कियों का विवाह 10 से 25 वर्ष की उम्र में हो जाता है। दोनों की उम्र समान होना आवश्यक नहीं है। लड़की का उम्र में बड़ा होना एक आम बात है। इसे ये लोग बुरा नहीं समझते। पुनर्विवाह पर कोई रोक नहीं है। इसे सामाजिक मान्यता प्राप्त रहती है। तलाक के लिए बहुत जुर्माना देना पड़ता है, अतः तलाक का प्रश्न बहुत कम उठता है। मोन्पा समाज में स्त्रियों के साथ भेदभाव नहीं होता। वे भी पुरुष के समान मेहनत करती हैं। मोन्पा समाज स्त्रियों को पूरा सम्मान देता है।

हर मोन्पा यह चाहता है कि उसका बच्चा उसी के घर में जन्म ले। लड़की के माता-पिता के घर बच्चा पैदा होना ये अशुभ मानते हैं। यह इनकी बड़ी पुरानी मान्यता है। शिशु के जन्म लेने के बाद उसे और उसकी जच्चा-माँ को गरम पानी से स्नान करवाते हैं। स्नान के बाद बच्चे को बाहर खुले में ले जाते हैं। उसे आसमान और धरती के दर्शन करवाते हैं। यहीं बच्चे को भगवान के आशीर्वाद मिल जाते हैं। एक दूसरे नियम के अनुसार तीन रात बीतने के बाद बच्चे को बाहर ले आते हैं। एक लामा को बुलाया जाता है जो घर में पूजा कराता है और घर का शुद्धीकरण भी करता है। घर के साथ-साथ माँ और बच्चे का

शुद्धीकरण भी किया जाता है। साथ ही साथ लामा बच्चे का नामकरण संस्कार भी करता है। इस समय ग्रह-नक्षत्रों का ध्यान रखते हुए बच्चे की जन्मपत्री भी बनाई जाती है। बुद्ध में आस्था रखने वाले इन लोगों का जीवन जन्म से मृत्यु तक संस्कारों में बँधा रहता है। अरुणाचल की दूसरी जन-जातियों में दूध का प्रयोग नहीं होता। मोन्पा लोग दूध और दूध से बनी चीजों का बहुत उपयोग करते हैं। चमरी गाय इनकी कामधेनु है। उससे इन्हें दूध और माँस भी मिलता है। चमरी गाय की पूँछ से ही भगवान की मूर्ति पर डुलाये जाने वाले चंवर बनते हैं।

मोन्पा लोग अतिथि सत्कार में सबसे आगे रहते हैं। पहले अतिथि को सम्मान के रूप में "खादा" देते हैं और फिर अपने मेहमानों को चाय पिलाते हैं। यह चाय हमारी चाय की तरह नहीं होती। इस चाय में बहुत सारा मक्खन होता है और इसमें चीनी के बदले नमक डालते हैं। यह चाय बड़ी स्वादिष्ट होती है। दो-तीन आदमी एक केटली भर मोन्पा-चाय पी लेते हैं। यह चाय ताजगी और शक्ति दोनों ही देती है।

अपने समाज के किसी व्यक्ति के मरने पर मोन्पा लोग मृत्यु-संस्कार करते हैं। जब एक धनी आदमी मरता है तो उसके शव को ये अपने शमशान "कार्पोचांग" ले जाते हैं। ये लोग मृत व्यक्ति के पास में आग जला देते हैं और अगर बत्तियाँ भी लगा देते हैं। इस तरह गिद्धों को लाश पर टूट पड़ने का निमंत्रण देते हैं। मृत व्यक्ति का सिर काटकर धड़ से अलग रख देते हैं। जब गिद्ध सारा शरीर खा लेते हैं तब अंत में काटा गया सिर उन्हें फिर से खाने को दिया जाता है। यदि गिद्ध निमंत्रण स्वीकार नहीं करते तो मुर्दे को जला देते हैं। सर्दी में जब कार्पोचांग नहीं जा सकते, तो भी मुर्दे को जला देते हैं।

एक साधारण आदमी के शव को पास की नदी पर ले जाते हैं। वहाँ मृतक के शरीर को 108 टुकड़ों में काटकर नदी में डाल देते हैं। नदी में मछलियाँ इन टुकड़ों को खा जाती हैं। यदि मृत व्यक्ति को कोई संक्रामक रोग रहा हो तो उसके शव को गाड़ दिया जाता है। मृत्यु के सात दिन बाद लामा एक खास तरह की पूजा कराता है। इस पूजा का उद्देश्य मृत-आत्मा को शांति देना होता है। पार्थिव शरीर के विसर्जन में बहुत-सी संस्कृतियों की छाप दिखाई पड़ती है।

तवांग का गोंपा मोन्पा लोगों का एक बड़ा तीर्थ और सांस्कृतिक केन्द्र होता है। लगभग 3,048 मीटर की ऊँचाई पर बना यह गोंपा भारत का सबसे बड़ा बुद्ध-विहार है। इसमें लगभग 500 लामा रहते हैं। डाक्टर एलविन ने इसकी तुलना इटली के पुराने शहर और पुराने आक्सफोर्ड से की है। इस मठ की स्थापना के बारे में कई मत हैं।

एक मत के अनुसार पंचम दलाई लामा के प्रतिनिधि मेरालामा ने इसकी स्थापना की। स्थापना के समय मेरालामा ने घोड़ों के देवता "तामडिंग" की पूजा की। तभी से आस-पास के क्षेत्र को तवांग कहने लगे।

दूसरा मत यह है कि बहुत पहले एक पूज्य लामा यहाँ आए और अपने घोड़े से उतरे। उन्होंने घोड़े को आशीर्वाद दिया। इस मत के अनुसार तवांग का अर्थ होता है "घोड़ों का अस्तबल"। इस क्षेत्र में सवारी का साधन केवल घोड़ा ही होता है। इस क्षेत्र में सवारी और सामान लाने-ले जाने में आज भी घोड़ा बहुत उपयोगी है।

तवांग के गोंपा में आज भी एक महान पुस्तक सुरक्षित है। इस पुस्तक में भगवान बुद्ध की वाणी है। भोज-पत्र (ताड़पत्र) पर पाली में बड़े-बड़े सोने के अक्षरों में यह पुस्तक लिखी गई है। एक-एक अक्षर दो-दो तोले तक सोने के अक्षरों का बना होता है। सोने के भार से यह पुस्तक बड़ी भारी हो गई है। दो आदमी मिलकर इसे उठा पाते हैं। किसी विशिष्ट मेहमान के आने पर गोंपा के लामा आज भी उसे यह पुस्तक खोलकर दिखाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि अच्छे काम करने वाले की बातें स्वर्णाक्षरों में लिखी जाती हैं। यह कहावत ही नहीं, यहाँ एक यथार्थ है। इस यथार्थ को आज भी हम अपनी आँखों से भारत, तिब्बत और भूटान के सांस्कृतिक संगम—तवांग में देख सकते हैं।

इस क्षेत्र में भिक्षुणियों के मठ भी हैं जिन्हें "आनी-गोंपा" कहते हैं। यहाँ भी पाली भाषा में प्राचीन भारत का दुर्लभ साहित्य उपलब्ध है। लाल कपड़े में बंधे पाली के अमूल्य ग्रंथ आज भी मोन्पा जनजाति का आध्यात्मिक मार्गदर्शन करते हैं।

10

अरुणाचल में कृषि व्यवस्था

अरुणाचल के पहाड़ी प्रदेश में भी खेती होती है, परन्तु यहाँ उसकी एक सीमा है। यहाँ झूम खेती की प्रधानता है। झूम खेती में पहले जंगल को काटकर सूखा देते हैं। फिर उसमें आग लगाकर जला देते हैं। एक-दो साल खेती करने के बाद उस जमीन को छोड़ देते हैं। फिर दूसरी जगह खेती करना आरम्भ कर देते हैं। यह क्रम चलता रहता है। आठ-दस साल बाद फिर पुरानी जगह पर खेती करने आ जाते हैं। ऊँचे पहाड़ी ढलानों पर इसी तरह खेती होती रहती है। हल, बैल और ट्रैक्टर यहाँ काम नहीं आते। एक नुकीली छड़ी (ड्रिबल स्टिक) से छेद करके उसमें बीज डाल दिया जाता है।

आपातानी लोगों के पास कुछ समतल भूमि है। यहाँ पर चावल की अच्छी खेती होती है। ये लोग बड़े परिश्रमी होते हैं। छोटे-छोटे खेतों से अधिक उपज लेने में ये दक्ष होते हैं। खेतों में पानी सदा रहता है, अतः मछली-पालन भी साथ-साथ चलता रहता है। एक साथ दो काम हो जाते हैं। प्रत्येक आपातानी परिवार के पास स्वयं की कुछ खेती की जमीन होती है। थोड़ी-सी जमीन ये व्यर्थ नहीं छोड़ते। पहाड़ के ऊपरी भागों में ये झूम-खेती करते हैं। यहाँ किसी भी परिवार के पास अधिक समतल जमीन नहीं होती। पिता के जीवनकाल में ही खेती की जमीन लड़कों में बाँट दी जाती है।

पूरे अरुणाचल में तीन तरह की खेती होती है—स्थाई खेती, झूम खेती और सम्मिलित खेती। खेती की ही तरह जमीन का स्वामित्व भी तीन तरह का होता है—व्यक्तिगत स्वामित्व, पूरी जाति या समाज का स्वामित्व एवं मिश्रित स्वामित्व।

आपातानी लोगों की अच्छी खेती के दो कारण हैं। एक तो इनके पास अच्छी जमीन बहुत कम है। इसी जमीन पर परिश्रम करके ये अधिक से अधिक उपज लेते हैं। दूसरे इस जमीन पर इनका स्वामित्व है। इससे इनको काम करने में बड़ा प्रोत्साहन मिलता है।

सियांग जिले के निचले भाग में पदम, मिन्योंग और गालोंग भी अब स्थाई खेती करते हैं। यहाँ चावल बहुत पैदा होता है। कुछ खेतों के मालिक नेपालियों और दूसरे लोगों

को खेती के काम में लगाकर खेती करवाते हैं। आपातानी लोग स्वयं अपने परिवार के साथ अपनी खेती करते हैं। अब तो अरुणाचल के कई भागों में पहाड़ों पर सुन्दर टैरेस काट-काट कर चावल की खेती की जाने लगी है। सिंचाई की सुविधा भी दिन-ब-दिन बढ़ती जा रही है। बहुत से भागों में लोग खेती में आत्मनिर्भर हो गए हैं।

जहाँ झूम खेती होती है, वहाँ जमीन का स्वामित्व पूरी जाति का होता है। पहले एक गाँव में एक ही जाति के लोग रहते थे। जिस गाँव में एक से अधिक जाति के लोग रहते हैं, वहाँ गाँव की कृषि योग्य भूमि को दो हिस्सों में बाँट दिया जाता है। समाज भी भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार अस्थाई रूप से दे देता है। यह अधिकार केवल खेती के समय तक ही सीमित रहता है। खेती के बाद जब जमीन बेकार पड़ी रहती है, तब वह समाज की भूमि हो जाती है। गाँव के जानवर वहाँ चरते हैं। एक से दूसरे स्थान पर ये नियम भी बदलते रहते हैं। गालोंग लोगों में यह नियम है कि दूसरी बार जब झूम-खेती का नंबर आता है तब उसी परिवार को पहले वाला खेती का स्थान दे दिया जाता है।

पदम-मिन्योंग समाज में भूमि पर व्यक्तिगत अधिकार होता है। भूमि का मालिक अपनी भूमि अपनी ही जाति के किसी दूसरे आदमी को बेच सकता है, उसके पास गिरवीं रख सकता है और उससे भूमि बदल भी सकता है।

डफला और ईद-मिशमी लोग मिलजुलकर खेती करते हैं। डफला लोग जंगल साफ करके नए बनाए खेत पर अपना अधिकार स्थापित कर लेते हैं। खामटी समाज में सभी लोग एक साथ मिलकर खेती करते हैं। मुखिया का खेत अलग रहता है। जंगल की भूमि भविष्य के लिए सुरक्षित रखी जाती है। जंगल से मिलने वाली लकड़ी, घास, बेंत और दूसरी चीजों पर सबका अधिकार रहता है। सभी वहाँ शिकार कर सकते हैं। जंगल में अलग-अलग जातियों के लिए जंगल के अलग-अलग भाग निश्चित कर दिए जाते हैं।

खेती और जंगल की भूमि के अलावा गाँव की भी जमीन होती है। समाज के सभी लोग मिलकर गाँव बसाने के लिए वहाँ की जमीन साफ करते हैं। यह गाँव की जमीन होती है। इसमें से प्रत्येक परिवार को गाँव में घर बनाने की और बगीचा लगाने की जमीन दी जाती है। जहाँ पंचायती घर होते हैं, उनके लिए गाँव जमीन ठीक कर देता है।

जहाँ मिश्रित खेती होती है, वहां जमीन का स्वामित्व भी दो तरह का होता है। स्थायी खेती वाली जमीन पर व्यक्तिगत अधिकार होता है और झूम-खेती की जमीन पर समाज का। कामेङ जिले के मोन्पा और शेरडुकपेन लोग मिश्रित खेती करते हैं।

अरुणाचल के खामटी, सिंगफो और मोन्पा लोग लकड़ी के हलों का प्रयोग करते हैं। हल को बैल या भैंसे खींचते हैं। पहाड़ों की ढलान पर टैरेस बड़ी सावधानी से बनाए जाते हैं। मिट्टी के कटाव को रोकना बड़ा आवश्यक होता है। खाद में पत्तों का उपयोग करते हैं।

पत्तों को परत-दर-परत जमाकर बरसात में सड़ा लेते हैं। इससे अच्छी खाद बन जाती है। कामेङ के लोग सर्दी में थोड़ा गेहूँ और जौ और गर्मी में मक्का पैदा कर लेते हैं। मिलेट झूम-खेती में पैदा करते हैं।

पदम मिन्योंग लोग अच्छी खेती करते हैं। वे झूम की जमीन की सीमा पहले से ठीक कर लेते हैं। किस वर्ष कहाँ खेती होगी, यह पहले से ही निश्चित हो जाता है। निशी लोग एक साथ अलग-अलग स्थानों पर खेती करते हैं। गालोंग मिट्टी के बहाव को रोकने के लिए बड़े-बड़े लट्ठों का उपयोग करते हैं।

झूम खेती

झूम खेती की प्रथा सभी जगह एक-जैसी है। सभी लोग मिलजुल कर खेती के लिए निश्चित स्थान के सभी छोटे-बड़े पेड़ काट देते हैं। लकड़ियाँ सूख जाने पर एक महीने बाद उसमें आग लगा देते हैं। इसके बाद जमीन की सफाई कर देते हैं। राख को समतल कर देते हैं। खेती करते समय वन के देवता, पेड़ के देवता और पृथ्वी के देवता की शांति के लिए पूजा और बलिदान का कार्यक्रम चलता है।

झूम खेती में बीज बोने के पहले तक सभी काम सामाजिक आधार पर होता है। खेतों की बाड़ लगाना एक बड़ा काम होता है। पदम मिन्योंग लोग पूरी झूम खेती की बाढ़ लगा देते हैं। कुछ जगह बीज बोने का काम परिवार के आधार पर चलता है। बीज बोने का काम औरतें करती हैं। मिलेट को छिड़क कर बोते हैं और मकई को जमीन खोदकर बोते हैं। खोदने के लिए लोहे की नुकीली छड़ी काम में लाते हैं।

झूम खेती मेहनत माँगती है। बीज बोने के बाद उन्हें पक्षी, घरेलू जानवरों और जंगली जानवरों से बचाना पड़ता है। आका समाज में युवक वर्ग यह काम करता है। खेत में झोपड़ी बना कर उन्हें वहाँ रहना पड़ता है। जहाँ परिवार बुवाई का काम करता है, वहाँ आगे का काम भी उन्हीं को करना पड़ता है। परिवार के लोग गाँव का घर छोड़कर खेती के स्थान पर चले जाते हैं। वहीं ये लोग अस्थाई घर बना लेते हैं। खेती काटने तक ये लोग वहीं रहते हैं।

फसल काटने का काम आसान होता है। हाथ से ही अनाज की बालियाँ तोड़ लेते हैं। निशी लोग चावल, मिलेट और मक्का बोते हैं। वे कुछ रुई भी पैदा कर लेते हैं। इसे वे आपातानी लोगों को बेच देते हैं। प्रत्येक परिवार अपना अनाज अपने घर में रखता है। खामटी लोग अपना सारा अनाज घर से दूर बने किसी स्थान पर इकट्ठा रखते हैं। हर रोज प्रत्येक परिवार को काम के आधार पर अनाज माप कर दे दिया जाता है। खेती में जो लोग सहयोग देते हैं, वे ही प्रत्येक दिन अनाज पाने के अधिकारी होते हैं।

अरुणाचल में प्रत्येक जाति और उपजाति को पहाड़ों, घाटियों और पहाड़ी ढलानों के भू-भाग पर अधिकार मिलता है। प्रत्येक पहाड़, जंगल और नदी-नाले का स्वामित्व स्थिर

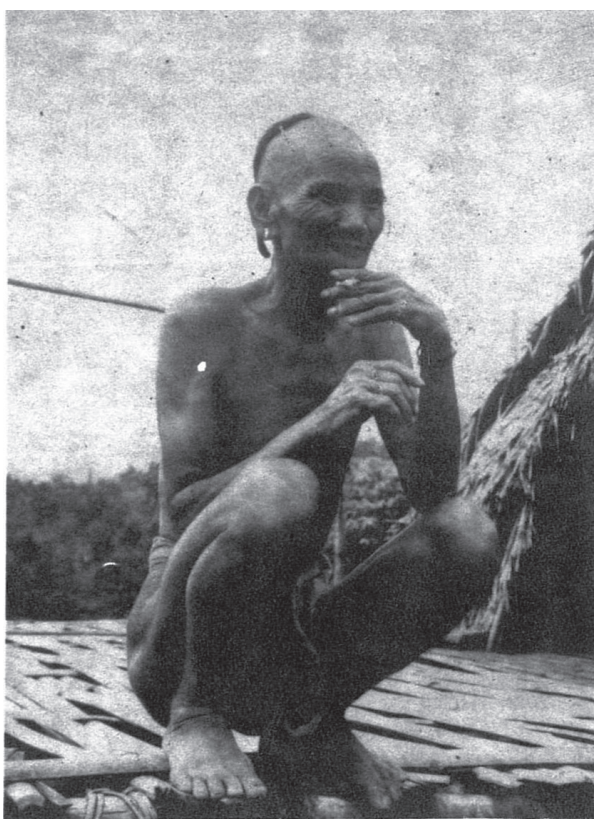
होता है। इस नियम का ईमानदारी से पालन होता है। कोई दूसरे की सीमा में नहीं जाता। नियम का पालन न होने पर झगड़े हो जाते हैं।

अरुणाचल में आज भी कम आबादी वाले क्षेत्रों में बिना मालिक की जमीन होती है। कोई व्यक्ति या जाति इस पर अपने स्वामित्व का दावा नहीं करती। सरकार ने ऐसी भूमि सुरक्षित जंगल में बदल दी है। पास में रहने वाली जातियाँ इन जंगलों का उपयोग कर सकती हैं। अपनी जरूरत की चीजों को जंगल से लाने पर कोई रोक नहीं है।

खेती के विकास पर यहाँ बहुत ध्यान दिया जाता है। खेती करने वालों को सभी तरह की जानकारी दी जाती है और साधन उपलब्ध करवाए जाते हैं।

झूमखेती की जगह अब यहाँ के लोग पानी-खेती का महत्व समझने लगे हैं। अब यहाँ पैदावार बड़ी तेजी से बढ़ रही है। अच्छे बीज, कीटनाशक दवाइयाँ और सिंचाई की सुविधाएँ सभी जगह उपलब्ध कराई जा रही हैं।

आज का अरुणाचल अनाज की पैदावार में बड़ी तेजी से आत्मनिर्भरता की ओर अग्रसर होता जा रहा है।



11

अरुणाचल के त्योहार

जिस प्रकार भारत के अन्य प्रदेशों के अपने कई विशेष त्योहार होते हैं, उसी प्रकार अरुणाचल प्रदेश में भी कुछ त्योहार बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मनाए जाते हैं। इनमें अरुणाचल की संस्कृति, नृत्य और संगीत की मनोहारी झलक देखने को मिलती है। यहाँ के निवासी इन त्योहारों के अवसरों पर देवी-देवताओं को बलि देकर प्रसन्न करते हैं और उनसे अच्छी खेती, पशुधन तथा सभी लोगों के कुशल-मंगल की कामना करते हैं। कठिन संघर्षमय जीवन की थकान में इन त्योहारों से आशा और उत्साह की नई किरणें फूट उठती हैं।

खॉ, "नेची दाउ", और "लोसर" त्योहार कामेंग और तवांग जिलों की जनजाति मिजि, आका और मोन्पाओं के प्रमुख त्योहार हैं। "ड्री", "न्योकुम" और "बोरी बूट" नाम के त्योहार सुबंसिरी जिले के निचले और ऊपरी भाग में बड़े उत्साह से मनाए जाते हैं। "सोलुंग" और "मोपिन" पूर्वी और पश्चिमी सियांग जिले के प्रमुख त्योहार हैं। "रेह", "सांगकेन" और "तामलाडू" नाम के त्योहार लोहित और अनिनी जिलों में बड़ी धूम-धाम से मनाए जाते हैं। "मोक", "लोकु" और "ओजियेले" नाम के त्योहार तिरप जिले के "तांगसा, नौकते और वांचू" जन-जाति के लोगों के प्रसिद्ध त्यौहार हैं।

खॉ त्योहार

कामेंग जिले के मिजी फरवरी-मार्च में इस त्योहार को बड़े उत्साह से मनाते हैं। इसमें नृत्य और गीतों की प्रधानता रहती है। "जाँगलाँग लोई" इनके देवता का नाम है। मिजी लोगों की धारणा है कि झूम खेती जलाते समय जाने-अनजाने होने वाली जीवों की हत्या का पाप इस देवता को मनाने से नष्ट हो जाता है। वे अनजाने में हुई हत्याओं के लिए "जाँगलाँग लोई" से क्षमा माँगते हैं। इस त्योहार को खेती काटने के बाद मनाते हैं। गाँव के बड़े-बूढ़े त्योहार का समय निश्चित कर देते हैं। इनका पुरोहित चीते की खाल से बनी हुई टोपी पहन कर पूजा की घंटी और पेड़ की एक टहनी हाथ में लेकर पूजा स्थल पर जाकर मंत्र बोलता

रहता है, मानो देवता से पूजा स्थल पर आकर भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना कर रहा हो। इस अवसर पर युवक चक्कर लगाते हुए घूम-घूम कर ढोल और मंजीरे बजाते रहते हैं।

इस प्रकार यह त्योहार पाँच से दस दिन तक चलता रहता है। जिस दिन त्योहार समाप्त होता है, उस दिन पुरोहित सब के गले में ऊन का धागा बाँध देता है। इस अवसर पर एक सामूहिक भोज भी होता है। दावत के बाद लोग अलग-अलग समूह में नाचते-गाते जंगलों में शिकार के लिए चले जाते हैं। इनका विश्वास है कि यह त्योहार इन्हें भविष्य के खतरों को सहन करने की शक्ति देता है। सर्दियों के दिनों में आका जनजाति के लोग इसी प्रकार से "नेची दाउ" त्योहार मनाते हैं।

लोसर त्योहार

कामेंग और तवांग जिलों के मोन्पा लोग इस त्योहार को मनाते हैं। इनका नव-वर्ष इसी त्योहार से प्रारम्भ होता है। चँवरी गाय के दूध से मक्खन और घी बनाने के साथ पूजा में चढ़ाने के लिए अन्य बहुत से पकवान भी बनाए जाते हैं।

दिवाली के त्योहार की भाँति इस त्योहार पर घर की सफाई की जाती है। पूजास्थल को सजाया जाता है। नववर्ष का प्रथम दिन लामा-लोसर कहा जाता है। छोटे लामा बड़े लामा के यहाँ जाकर आशीर्वाद प्राप्त करते हैं। सभी लोग इस अवसर पर अपने घरों में भगवान बुद्ध की पूजा करते हैं। पकवानों का भोग लगाते हैं। उत्सव का दूसरा दिन राजा-लोंसर कहलाता है। इस दिन लोग एक दूसरे से मिलकर नए वर्ष की शुभ कामनाएँ देते हैं। तीसरे दिन ये लोग अपने घर के ऊपर झण्डा लगाते हैं। इस झण्डे पर प्रार्थना के मंत्र लिखे रहते हैं। उनका विश्वास है कि ऐसा करने से बुरी आत्माएँ झण्डे के नीचे नहीं आएँगी और लोगों को उनके प्रभाव से छुटकारा मिला रहेगा। इस अवसर पर धर्म-ग्रंथों का पाठ भी किया जाता है। गाँव के बड़े-बूढ़े लोग "गोंपा" में घी के दीपक जलाते हैं। पहाड़ों पर जाकर भी दीपक जलाए जाते हैं। इस त्योहार को मनाने के बाद फिर से लोग दुगने-तिगुने उत्साह से अपने-अपने कामों में लग जाते हैं।

ड्री त्योहार

लोअर सुबांसिरी जिले के आपातानी लोग अपने प्रियाजो नामक महीने में (जुलाई के आसपास) ड्री नाम के त्योहार को मनाते हैं। यह त्योहार धान बोने के बाद मनाया जाता है। इस अवसर पर "प्रियातानी" नाम के देवता को अच्छी फसल की कामना से नाच गाकर प्रसन्न किया जाता है। इस त्योहार की तैयारी पहले से कर ली जाती है। युवक-युवतियाँ नाचने-गाने का अभ्यास करना प्रारंभ कर देते हैं। सारे वातावरण में खुशियाँ छा जाती हैं।

इस अवसर पर गाँव के सभी लोग एक परिवार के रूप में मिल-जुल जाते हैं। आपातानी लोग इस त्योहार को मनाने में तन-मन-धन से योगदान करते हैं। इस अवसर



चित्र 20: आपातानी लोगों का ड्री त्योहार

पर पुजारी के साथ गाँव के लोग मैदान में पूजा-मंच पर जाते हैं। पहले पुजारी खेतों का चक्कर लगाता है, फिर बाँस की पतली छीलन से बने "दोनी-तानी" एवं अन्य देवताओं की सुन्दर कलात्मक मूर्तियों की पूजा-मंच पर स्थापना करता है।

रंग-बिरंगे कपड़ों में सजे स्त्री-पुरुष और बच्चे बड़े सुन्दर लगते हैं। बड़े पुजारी के साथ छोटे पुजारी मंत्रों का उच्चारण करते हैं। बलि दिए जाने के समय पशुओं पर चावल के आटे का लेप मल दिया जाता है। अलग-अलग देवताओं के नाम अलग-अलग बलि दी जाती है। बलि पशु का माँस सामूहिक भोज के काम आता है। सभी लोग इसे प्रसाद मानकर स्वीकार करते हैं।

लड़कियाँ आपोंग और खीरा सभी लोगों को बाँटती हैं। खाने-पीने के साथ नाच-गाना चलता रहता है। आपातानी नृत्यों में "प्री" नृत्य बड़ा सुन्दर होता है। यह लड़के-लड़कियों

का सामूहिक नृत्य होता है। उभरते कलाकारों के लिए यह एक सुअवसर होता है। हँसी और ठहाकों से वातावरण गूंजता रहता है।

तीसरे दिन नाच-गाने के बाद सामूहिक भोज होता है। इस अवसर पर मेहमानों का विशेष स्वागत किया जाता है। सब लोग परस्पर प्रेम से मिलते हैं। इस प्रकार इस अवसर पर अच्छी फसल होने की आशा इन लोगों में नई उमंग भर देती है।

न्योकम त्योहार

सबांसिरी जिले में बसे निशी लोगों की भी संख्या कम नहीं है। धान के हरे-भरे खेतों को देखकर अपने देवता "विस" को प्रसन्न करने के लिए निशी लोग "न्योकम" नाम का त्योहार मनाते हैं। यह त्योहार अगस्त माह में पड़ता है। इस अवसर पर "विस" से क्षमा प्रार्थना की जाती है और उनसे सभी लोगों के कुशल-मंगल की कामना की जाती है।

कहते हैं कि एक बार इनके देवता दोजिंग ने इनके आदि पुरुष तानी पर नाराज होकर उनकी दोनों पुत्रियों को बन्दी बना लिया था। अपनी लड़कियों को मुक्त कराने के लिए तानी ने बलि दी, तब "दोजिंग" ने प्रसन्न होकर दोनों पुत्रियों को मुक्त कर दिया और तानी को प्रतिवर्ष एक उत्सव मनाकर बलि देते रहने का आदेश दिया। तभी से देवता की प्रतिमा बनाकर पुजारी इस त्योहार के अवसर पर मंत्रों का पाठ करता आ रहा है। लड़कियाँ नाचती-गाती हैं। बलि दिए जाने वाले पशु को बाँसों पर लटका कर पूजा स्थल तक ले जाया जाता है। इस प्रकार "विस" को बलि चढ़ाकर अच्छी खेती, अच्छे स्वास्थ्य और सुखी भविष्य की कामना की जाती है।

बोरीबूट त्योहार

सुबांसिरी जिले के ऊपरी भाग में रहने वाले हिलमीरी लोग बोरी बूट नाम का त्योहार मनाते हैं। यह त्योहार फरवरी में मनाया जाता है, जो तीन दिन तक चलता रहता है। गंगा-गाँव और दापोरिजो इस त्योहार के प्रमुख केन्द्र हैं।

एक समिति त्योहार की रूपरेखा बनाती है, क्योंकि इनके सभी कार्यक्रम योजनाबद्ध तरीके से ही होते हैं। त्योहार के लिए सभी आवश्यक वस्तुएँ पहले से जुटा ली जाती हैं। हिलमिरी के अतिरिक्त टगीन, निशी और गालोंग जनजाति के लोग भी इस त्योहार में भाग लेते हैं।

शकुन विचार कर पुरोहित का चुनाव किया जाता है। पुरोहित पूजा स्थल का चुनाव करता है। पहले दिन वह मंत्र पढ़कर देवताओं का आहवान करता है तथा उनसे धन-धान्य एवं सुख-शान्ति की प्रार्थना करता है।

बाँस की बारीक छीलन से "ऊयू-री-गी" देवता की प्रतिमा बनाते हैं। गाँव से पूजा स्थल तक शोभा-यात्रा निकाली जाती है। स्त्रियाँ चावल का आटा जलूस पर फेंकती हैं

तथा पुरुष प्रसन्न होकर जोर-जोर से गाते-नाचते चलते हैं। बलि के समय तक नाच-गाना चलता रहता है।

इस अवसर पर ये लोग अपने देवता से नदी पर बने पुल के सुरक्षित रहने की भी प्रार्थना करते हैं, क्योंकि कमला नदी इनकी जीवनरेखा है। इन्हें रोज कई पुल पार करने पड़ते हैं। ये पुल नदी पर झूलते रहते हैं तथा बेंत और तारों की सहायता से बनाए जाते हैं।

मोपिन त्योहार

पश्चिमी सियांग जिले में गालोंग जनजाति के लोग रहते हैं। आलोंग इनका मुख्यालय है। इस प्रगतिशील जन-जाति का मुख्य त्योहार मोपिन है जो अच्छी फसल और स्वास्थ्य की कामना से मनाया जाता है।

गालोंग "तानी" को आदि पुरुष मानते हैं, जिसने प्रसन्न होकर अच्छे बीज तथा खेती के औजार इन्हें दिए थे। तभी से बीज बोने के बाद इस त्योहार को मनाने की परम्परा है। इस त्योहार को ये लोग लूमी और लूकी महीनों (मार्च-अप्रैल) में मनाते हैं।

बहुत पहले से ही इस त्योहार की तैयारी कर ली जाती है। खाने-पीने की वस्तुएँ, आपोंग और चावल का आटा तैयार कर लिया जाता है। यही आटा अबीर तथा गुलाल की तरह एक दूसरे के चेहरे पर मला जाता है।

दिपी उत्सव से यह त्योहार शुरू होता है। बाँस की खपच्चियों से वर्षा के देवता दोली और मोपिन की प्रतिमाएँ बनाई जाती हैं। मंत्रों के पाठ के साथ उनकी स्थापना की जाती है। देवता से पृथ्वी पर आने के लिए प्रार्थना की जाती है।

युवकों की टोलियाँ घर-घर जाकर माँस, मछली और आपोंग इकट्ठा करती हैं। बाद में इसे डेरे (पंचायत घर) पर ले जाया जाता है। इस त्योहार पर कुछ-कुछ होली जैसा दृश्य देखने को मिलता है, क्योंकि ये लोग चावल का आटा अबीर या गुलाल की भाँति एक दूसरे के चेहरों पर मलते हैं और खुशियाँ मनाते हैं।

दोपहर में बलि देने का कार्यक्रम चलता है। बलि देना इस त्योहार का आवश्यक कार्य है। लोग "हे मोपिन" के नारे लगा-लगा कर नाचना-गाना शुरू कर देते हैं। दूसरे दिन सामूहिक भोज में सभी लोग एक परिवार की भाँति एक साथ भाग लेते हैं। तीसरे दिन इस अवसर पर बने केक और माँस सभी लोगों में बाँटे जाते हैं। चौथे दिन चावल की बट्टियों को बाँधने वाले पत्ते मोपिन की प्रतिमा के पास लटका दिए जाते हैं। पुरोहित मंत्रों का पाठ करता रहता है। सभी लोग नाचते-गाते हैं। पाँचवे दिन मोपिन की भाव भीने मन से विदा कर दी जाती है। पुरोहित के साथ गाँव के बाहर जाकर एक वर्ष के लिए मोपिन को विदा कर आते हैं और अच्छी फसल की आशा लेकर अपने खेतों पर वापस लौट आते हैं।

सोलुंग त्योहार

सोलुंग पूर्वी सियांग के आदी लोगों का सबसे बड़ा त्योहार है। पासीघाट पूर्वी सियांग का मुख्यालय है। यह त्योहार जून-जुलाई के महीने में मनाया जाता है। सात दिन तक चलने वाले इस त्योहार की तिथियाँ केबाँग (पंचायत) निश्चित करती है।

यह त्योहार खेती से जुड़ा हुआ है। अब खेती के तरीकों में बहुत परिवर्तन हो गए हैं, पर यह त्योहार पारम्परिक ढंग से ही आज भी बड़े उत्साह से मनाया जाता है। त्योहार के काम में आने वाली चीजें, जैसे—माँस आपोंग, सब्जियाँ आदि पहले से ही जमा कर ली जाती हैं।

पहले दिन बलि दी जाती है। बलि का यह माँस सामूहिक भोज के लिए रख दिया जाता है।

त्योहार का दूसरा दिन "येंगलिंग" कहलाता है। इसमें मेहमानों को दावत दी जाती है।

तीसरे दिन का कार्यक्रम खेतों में होता है। इसे "विन्यात" कहते हैं। खेती के देवता को प्रसन्न किया जाता है और अच्छी फसल की कामना की जाती है।

सातवें दिन मोसुप में गाँव के सभी बड़े-बूढ़े इकट्ठे हो जाते हैं। वे तीर कमान बनाते हैं और बाद में इन्हें गाँव के सभी दरवाजों पर लटका देते हैं। उनकी ऐसी मान्यता है कि ऐसा करने से प्रेत आत्माएँ घर में प्रवेश नहीं कर पाएँगी।

दसवें दिन धान के खेत से बीमार पौधे उखाड़ कर फेंक दिए जाते हैं। खेती को कीड़ों से बचाने के लिए "किनेनाने" से प्रार्थना की जाती है।

"पोनुंग" आदी लोगों का एक खास नृत्य है। यह अरुणाचल के सुन्दरतम नृत्यों में से एक है। सोलुंग त्योहार से पोनुंग नृत्य का घनिष्ठ संबंध है। इस उत्सव का दूसरा नाम "सोलुंग-पोनुंग" भी है। पहले दिन से ही यह नृत्य आरंभ हो जाता है। इसमें चौदह से अठारह वर्ष तक की लड़कियाँ भाग लेती हैं। नृत्य करने वाली लड़कियों को "पोनुंग बोना" कहते हैं।

नृत्य का सूत्रधार "मीरी" सबके बीच में रहता है। उसके चारों ओर एक जैसी पोशाक में लड़कियाँ नाचती हैं। इनके लोकगीतों में हमें इनके आदि ज्ञान की झलक मिलती है। इन गीतों में पृथ्वी, पौधों और संसार के बनने की कहानियाँ होती हैं। इन लोकगीतों को "आबांग" कहते हैं। "आबांग" आदी-ज्ञान के भण्डार माने जाते हैं।

आदी लोग विचारों के बड़े धनी होते हैं। धान कहाँ से आया? इस पर उनकी एक कहानी है। ज्ञान के देवता का एक पुत्र था। उसका नाम "यिदुम बोत्ते" था। उसके जीवन रस से धान का पौधा निकला। देवी "किनेनाने" ने इस पौधे की देखभाल कर धान पैदा किया। लोगों ने एक गिलहरी को दूत बनाकर "किनेनाने" के पास भेजा। गिलहरी ने

"किननाने" से लोगों को धान देने की प्रार्थना की। प्रार्थना मान ली गई। "किननाने" ने एक शर्त लगा दी कि प्रत्येक वर्ष बलि देकर देवी को प्रसन्न करना होगा।

सोलुंग खुशियों का त्योहार है। सभी लोग इस अवसर पर आनन्द विभोर होकर नाचते हैं, गाते हैं और सामूहिक दावत का आनन्द लेते हैं।

यह त्योहार इन्हें कठिन जीवन की चुनौतियों का सामना करने की शक्ति देता है।

रेह त्योहार

लोहित और दिबांग जिलों में "ईदू मिशमी" लोग रहते हैं। "रेह" को "ईदू मिशमी" बड़ी श्रद्धा से मनाते हैं। "रेह" शांति और धन-धान्य को देने वाला देवता है। खाने-पीने की चीजें और यो (आपोंग) पहले से ही बनना शुरू हो जाती हैं। पहले दिन का उत्सव "अद्रोपो" कहलाता है। बलि दिए जाने वाले पशु बाँध दिए जाते हैं। सभी लोग नाच-गान में तल्लीन हो जाते हैं। पूरा वातावरण आनन्द और उत्साह से भर जाता है।

दूसरे दिन "ऐ-थाली" का आयोजन होता है। पशुओं की बलि चढ़ाई जाती है। इनका पुरोहित मंत्रों में कहानी कहता है। इस कहानी में पशुओं के जन्म का उल्लेख रहता है। अतिथियों का खूब स्वागत होता है। सामूहिक भोज का सभी लोग आनन्द उठाते हैं।

तीसरे दिन का सामूहिक भोज जल्दी आरंभ हो जाता है। ऐसा दूर से आने वाले मेहमानों की सुविधा को ध्यान में रखकर किया जाता है। आसपास के गाँववालों को भी शुभ कामनाएँ और खाने की चीजें भेजी जाती हैं। ईदू अच्छे पड़ोसी बनाने में विश्वास करते हैं।

चौथे दिन भाग्य की देवी की पूजा की जाती है। उस देवी को "एली रुमनी" कहते हैं।

ईदू बड़े विनोद प्रिय होते हैं। इस अवसर पर हँसाने वाले लोकगीत गाए जाते हैं। सभी लोग विनोद का पूरा आनन्द उठाते हैं। जवान और बूढ़ों में होड़ लग जाती है। इस तरह खुशी के वातावरण में त्योहार आगे बढ़ता है।

छठे दिन घर की देवी को प्रसन्न किया जाता है। खेतों में "यों" (आपोंग) चढ़ाकर अच्छी फसल की कामना की जाती है।

अंतिम दिन इनके पुरोहित (ईगू) का नाच होता है। इससे उत्सव की गरिमा बढ़ जाती है। ईगू के साथ नाचने वाले एक जैसी पोशाक पहनते हैं। इसी के साथ "रेह" को विदाई दे दी जाती है और उत्सव समाप्त हो जाता है।

सांगकेन त्योहार

खामटी लोग लोहित जिले में रहते हैं। ये बौद्ध धर्म को मानते हैं। "सांगकेन" इनका बड़ा त्योहार है। इनके अपने महीनों के नाम होते हैं। अप्रैल में इनका महीना "नूनहा" आता है। इसी समय इस त्योहार का आयोजन किया जाता है। यहीं से इनका नया वर्ष शुरू होता है।

इस त्योहार का धार्मिक आधार है। बौद्ध मंदिर से भगवान बुद्ध की शोभा-यात्रा पालकियों में निकाली जाती है। इस तरह मूर्तियों को त्योहार-स्थल पर ले जाते हैं। मंत्रोच्चारण के साथ-साथ मूर्ति को स्नान कराते हैं। मूर्तियों को रखने के लिए एक अस्थाई मंदिर की तरह का घर बनाते हैं। फूल और पत्तों से उसे खूब सजाते हैं। भिक्षुक और गाँव के लोग मूर्तियों पर जल चढ़ाते हैं। यह भगवान बुद्ध को स्नान करवाने का पर्व है। लोग एक दूसरे पर भी पवित्र जल छिड़कते हैं और आनन्द विभोर हो जाते हैं।

खामती समाज में बड़ी एकता होती है। ये खेती भी सामूहिक रूप से करते हैं। इस उत्सव में इनकी एकता के दर्शन होते हैं। इस अवसर पर आयु में छोटे लोग अपने से बड़ों का सम्मान करते हैं। इस मौके पर अतिथियों का मान-सम्मान भी किया जाता है।

तीसरे दिन मूर्तियों को फिर से मंदिर में ले जाते हैं। इस समय प्रकृति की सुन्दरता भी बढ़ जाती है। सभी तरफ हरियाली छा जाती है और फूल खिल जाते हैं।

मंदिर में मूर्तियों को पहुँचाने के बाद यह उत्सव समाप्त हो जाता है।

तामलादू त्योहार

डिगारु मिशमी जनजाति लोहित जिले में रहती है। मार्च के महीने में पड़ने वाला "तामलादू" इनका प्रसिद्ध त्योहार है। प्राकृतिक कठिनाइयाँ इनके जीवन में बहुत हैं, अतः इन विपदाओं से बचे रहने के लिए ये लोग पृथ्वी और पानी के देवताओं की पूजा करते हैं। इनका विश्वास है कि ये देवता प्राकृतिक बाधाओं से इनकी रक्षा करते हैं।

इस त्योहार का सम्बन्ध भी कृषि से ही है। इस त्योहार में ये लोग अपने सबसे बड़े देवता "जेबमालू" की पूजा करते हैं। देवता से अच्छी उपज, खेती, पशुओं की रक्षा तथा सबके स्वास्थ्य की जेबमालू से प्रार्थना की जाती है।

अन्य त्योहारों की भाँति नाचना-गाना तथा त्योहार की समाप्ति कर भारी मन से उसे विदा देना इस त्योहार में भी होता है।

इस त्योहार में आने वाले नए वर्ष में खुशियों की कामना के प्रतीक सूर्य भगवान को भी प्रसन्न करने के लिए नाच-गानों का आयोजन होता है। इनके पुरोहित को भी नाचना होता है। डिगारु जनजाति का विश्वास है कि सूर्य ही संसार को बनाने वाले देवता हैं और वे ही मुसीबतों से पृथ्वी की रक्षा करते हैं।

ओजियाले त्योहार

वांचू लोग तिरप जिले में रहते हैं। ओजियाले इनका खास त्योहार है। यह त्योहार भी खेती से संबंधित है जो मार्च-अप्रैल के महीनों में बारह दिन तक मनाया जाता है।

बड़े-बूढ़े इस त्योहार का समय निश्चित करते हैं। पहले दिन बलि दिए जाने वाले पशुओं को बाँध दिया जाता है। त्योहार में काम आने वाली अन्य वस्तुओं को भी एकत्रित



चित्र 21: तांगसा लोगों का मोल त्योहार

कर लिया जाता है। इस अवसर पर गाँव के मुखिया को सभी लोग भेंट देते हैं। यह त्योहार गाँव के बाहर खुले स्थान में मनाया जाता है।

रंग-बिरंगे वस्त्र पहने नाचते-गाते लोग आपस में तांबूल और चावल के आटे की बट्टियों का आदान-प्रदान करते हैं। नृत्य करने वालों की टोलियाँ घर-घर जाती हैं। पाँचवें दिन ये टोलियाँ पास के गाँवों में भी घूमती हैं। अंत में नवें दिन सभी अपने-अपने खेतों पर जाकर अच्छी फसल के लिए धरती माता की पूजा करते हैं।

समाज की सुख-सुविधा के लिए इस त्योहार के अंतिम दिन सभी लोग मिलकर रास्ते और पुल बनाते हैं। यह सामूहिक निर्माण कार्य उत्सव का ही एक अंग माना जाता है। इस काम में दूसरे गाँवों के लोग भी भाग लेते हैं।

मोल त्योहार

असम के मैदानी इलाकों के पास तांगसा लोग रहते हैं। खेती से संबंधित त्योहारों से इनका यह सबसे बड़ा त्योहार है जो अप्रैल के महीने में धान रोपने के बाद मनाया जाता है।

"चेगवा" देवता और "फारेग" देवी की पूजा के बाद यह त्योहार आरम्भ होता है। इनका विश्वास है कि धूम-धाम से त्योहार मनाने से देवता प्रसन्न होते हैं, लोग सुखी रहते हैं और खेत की उपज बढ़ती है।

इनके मोरूंग-घर (पंचायत घर) में एक लंबा ढोल रहता है जिसे लकड़ी के बड़े-बड़े डंडों से कई लोग एक साथ बजाते हैं। यह ध्वनि सबको त्योहार-स्थल पर आने का संकेत करती है। दोपहर में नाचने-गाने वालों का जुलूस गाँव के सभी रास्तों से होकर निकलता है। घरों में मेहमानों का विशेष स्वागत होता है। आधी रात तक गीतों को गाया जाता है, जिनमें संसार की उत्पत्ति की कथा रोचक ढंग से कही गई होती है। "मोल" की महानता का वर्णन भी गीतों में रहता है। सनने वाले प्रश्न करते हैं और गीतों के माध्यम से उनके प्रश्नों का उत्तर शीघ्रता से दिया जाता है।

दूसरे दिन नाचने वाले लड़के-लड़कियाँ गाँव से बाहर थोड़ी दूर पर एकत्रित हो जाते हैं। यहाँ खेती से संबंधित देवी-देवताओं की पूजा की जाती है। गाने वालों के ढोल पर कुछ पत्ते बाँध दिए जाते हैं, जिन्हें तांगसा लोग बहुत पवित्र मानते हैं। लौटकर नर्तकों का जुलूस घर-घर जाता है।

तीसरे दिन गाँव के सभी लोग मोरुंग घर (पांग-पोंग) में जमा हो जाते हैं। बड़े छोटों को आशीर्वाद देते हैं। मामा और चाचा अपने भानजों और भतीजों के घर जाते हैं।

अंत में "मोल" की विदाई के गीत गाए जाते हैं। भारी मन से उत्सव को विदा दी जाती है और उत्सव समाप्त हो जाता है। इस प्रकार उत्सव के बाद लोग शिकार पर जाते हैं। जो भी शिकार प्राप्त होता है उसे गाँव भर के लोगों में बाँट दिया जाता है।

लोकू त्योहार

तिरप में नौक्ते जनजाति के लोग रहते हैं। इनका मुख्यालय खोंसा है। यों तो नौक्ते कई त्योहार मनाते हैं, किन्तु "लोकू" इनका प्रमुख त्योहार है। खेती से संबंधित होने के कारण यह अक्टूबर-नवम्बर में धान रोपने के बाद मनाया जाता है। यह भी आनंद और उत्साह का एक पर्व है।

कृषि के देवता को प्रसन्न करने के लिए बलि चढ़ाई जाती है। त्योहार के भोज के लिए लड़के-लड़कियाँ जंगल से काऊपात लाते हैं। इन पत्तों से चावल, माँस और चटनी के पैकेट बना लेते हैं। जलाने की लकड़ी भी बड़ी मात्रा में एकत्रित कर ली जाती है। आग जलाकर उसके चारों ओर त्योहार का सारा कार्यक्रम चलता है।

तीन दिन के इस त्योहार में पहले दिन बलि देना, दूसरे दिन मित्र और संबंधियों के यहाँ जाना और परस्पर अभिवादन करना तथा तीसरे दिन मेहमानों के खाने-पीने की व्यवस्था करने के काम किए जाते हैं। नौक्ते लोगों का प्रमुख नृत्य "छालो" इस उत्सव

में जान डाल देता है। इस उत्सव के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों में इतिहास और सामाजिक जीवन का वर्णन रहता है। नाचने वाले सजधज कर आते हैं। "दाव" और "भालों" के साथ इनका नृत्य देखते ही बनता है। यह नृत्य बहादुरी प्रदर्शन का नृत्य होता है। नृत्य के साथ-साथ दूसरी ओर स्त्रियाँ और बच्चे नाचते रहते हैं।

तीन-दिन बाद लोकू का समापन होता है। इस समापन में विदाई के गीत गाए जाते हैं। एक गीत का भावार्थ कुछ इस प्रकार है—

फूल मुरझा गए हैं।
फल भी अधिक पक गए हैं।।
सभी कहते हैं,
लोकू समाप्त हो गया है।।

जहाँ से आए-वहीं जाओ लोकू। हम सोचते हैं, लोकू यही हैं। आने वाले वर्ष में नई खुशियाँ लाना, लोकू।

12

नेफा से अरुणाचल तक

उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों ने जन-जातियों की समस्याओं की ओर ध्यान देना शुरू किया। सन् 1831 में होस विद्रोह (सिंहभूमि) और सन् 1846 में खोन विद्रोह हुआ। सन् 1946 के संथाल विद्रोह ने अंग्रेजों के दृष्टिकोण को बदल दिया। नान "रेग्यूलेटिंग ट्रैक्ट्स" की स्थापना इस दिशा में पहला कदम था। सन् 1839 में मद्रास प्रेसीडेन्सी और सन् 1856 में बम्बई में आदिवासी इलाकों का शासन अलग कर दिया गया। साधारण नियमों द्वारा इनका शासन नहीं चल सकता था। प्रशासन के नए नियमों के अनुसार जन-जातीय समस्याओं और नियमों का ध्यान रखा जाता था। आदिवासी क्षेत्र में शांति रखना ही इन नियमों का उद्देश्य था।

सन् 1826 में असम से बर्मियों का निष्कासन कर वहाँ का शासन सीधा अंग्रेजों ने संभाल लिया। ऊपरी असम में सदिया को छोड़ कर सारा इलाका पुरन्दर सिंह को दे दिया गया। पुरन्दर अंतिम अहोम शासक था। जब फिर से बर्मी हमला हुआ तब इस क्षेत्र में अव्यवस्था फैल गई। "अहोम" राजाओं का शासन खत्म हो गया। अब अंग्रेजों ने पूरे असम की बागडोर अपने हाथों में ले ली। पूरे क्षेत्र को "नान रेग्यूलेटिंग प्राविन्स" के रूप में बदल दिया गया।

इस व्यवस्था से पहाड़ों में रहने वाले लोगों और मैदानी भागों के निवासियों के बीच लेन-देन चलने लगा। मिशमी लोग तीता तथा कस्तूरी लेकर नीचे के क्षेत्रों में व्यापार करने जाते थे। उनकी होड़ स्थानीय व्यापारियों से लग जाती थी। "अहोम" राजा कभी-कभी पहाड़ी लोगों की मदद से नीचे रहने वाले लोगों पर हमला भी करवाते थे। अंग्रेज शासक पहाड़ों पर समय-समय पर सैनिक भेजकर उन्हें दण्ड दिलवाने से चूकते न थे।

इसी बीच सीमांत इलाकों के लिए एक अधिनियम बनाया गया। इसमें राज्यपाल को यह अधिकार दिया गया कि आदिवासी इलाकों में जाने पर रोक लगाने के लिए एक "आंतरिक रेखा" का निर्धारण करें। इस आंतरिक रेखा को पार करने के लिए एक लायसेंस का होना आवश्यक था। इस तरह सन् 1873 में आंतरिक रेखा (इनर-लाइन) की स्थापना

हुई। इस आंतरिक रेखा के अन्तर्गत कामरूप गोपाल पारा में (भूटान की तरफ), दरंग (भूटिया, आका, डफला आदि जन-जातियाँ) लखीमपुर (डफला, मीरी, आबोर मिरानी, खामती सिंगफो आदि जनजातियाँ) शिव सागर (नगा) जिले में आते थे। आज भी हम अरुणाचल में बिना अनुमति पत्र के आंतरिक रेखा पार नहीं कर सकते।

सन् 1881–82 में एक पोलिटिकल आफिसर की नियुक्ति हुई। उसका दफ्तर सदिया में था। सन् 1912–13 में उत्तर पूर्वी सीमांत प्रदेश के शासन में थोड़ा सुधार हुआ। आदिम जातियों की समस्याओं पर ध्यान देने के लिए अलग जिला बनाया गया। पूर्वी सुबांसिरी सियोम-डिवाइड के पश्चिम भाग के लिए एक अलग पोलिटिकल आफिसर की नियुक्ति की गई।

सन् 1914 में सीमांत क्षेत्र के शासन में कुछ और सुधार किया गया। भारत सरकार के विदेश और राजनैतिक विभाग ने एक अध्यादेश के द्वारा सन् 1880 के असम के "फ्रंटियर-ट्रैक्ट-रेगुलेशन" का क्षेत्र और बढ़ा दिया गया। अब इसमें आबोर (आदी), मीरी, मिशमी, सिंगफो, नगा, खामती, भूटिया, आका और डफ्ला जन-जाति क्षेत्र को मिला दिया गया।

इसी वर्ष लखीमपुर फ्रंटियर ट्रैक्ट की स्थापना हुई। पूर्वी, मध्य और पश्चिमी क्षेत्र की दक्षिणी सीमा निर्धारित की गई। पूर्वी और मध्य क्षेत्र को एक पोलिटिकल आफिसर के आधीन कर दिया गया। इसका मुख्यालय सदिया में था। सन् 1919 में इन्ही क्षेत्रों को बालीपाड़ा और सदिया फ्रंटियर ट्रैक्ट बना दिया गया।

सन् 1935 के इंडिया ऐक्ट का इन क्षेत्रों की स्थानीय स्वाधीनता पर कोई असर नहीं पड़ा। इनकी देख-रेख का भार-सीधा असम के राज्यपाल को दे दिया गया। सन् 1937 में राज्यपाल के सचिव की नियुक्ति हुई। सचिव का काम इन क्षेत्रों की देख-रेख में राज्यपाल की सहायता करना था। इसका आर्थिक भार असम को ही उठाना पड़ता था। भारत सरकार भी अलग से इस क्षेत्र को आर्थिक सहायता देती थी।

सन् 1943 में राज्यपाल के सलाहकार की नियुक्ति हुई। सलाहकार का क्षेत्र उत्तरी-पूर्वी सीमांत अंचल था। सलाहकार की नियुक्ति भारत सरकार करती थी। इस प्रकार अब इस क्षेत्र का शासन सुचारू रूप से चलने लगा। असम का राज्यपाल गवर्नर जनरल और बाद में राष्ट्रपति का प्रतिनिधि माना गया।

सन् 1943 में ही "तिरप फ्रंटियर ट्रैक्ट" बनाया गया। इसमें लखीमपुर और सदिया फ्रंटियर टैक्ट के भाग मिला दिए गए। इसका मुख्यालय मार्गेटा में था। "बालीपाड़ा फ्रांटियर ट्रैक्ट" को सन् 1946 में दो भागों में बाँट दिया गया। एक सेला सब-एजेन्सी और दूसरा सुबांसिरी क्षेत्र कहलाया। आजादी के बाद सन् 1948 में सदिया फ्रंटियर ट्रैक्ट को आबोर और मिशमी हिस्सों में विभाजित कर दिया गया।

सन् 1954 में फ्रंटियर ट्रैक्ट्स के नामों को बदल दिया गया। अब नेफा के अन्तर्गत इनके नाम इस प्रकार हो गए—

(क) कामेंग फ्रंटियर डिवीजन (ख) सुबांसिरी फ्रंटियर डिवीजन
(ग) सियांग फ्रंटियर डिवीजन (घ) लोहित फ्रंटियर डिवीजन
(ङ) तिरप फ्रंटियर डिवीजन (च) दवेनसाग फ्रंटियर डिवीजन

सन् 1957 में ट्वेनसांग को नगा हिल्स में मिला दिया गया। सन् 1964 में इन फ्रंटियर डिवीजनों को जिलों में बदल दिया गया। प्रत्येक जिले का भार एक डिप्टी कमिश्नर को दे दिया गया।

20 जनवरी सन् 1973 को अरुणाचल राज्य का जन्म हुआ। अब इसे नेफा "उपुसी" (उत्तरपूर्वी सीमा ऐजन्सी) के स्थान पर अरुणाचल कहने लगे। अरुणाचल का अर्थ होता है—उदय होते हुए सूर्य की भूमि।

अब शासन की दृष्टि से अरुणाचल को इन जिलों में बाँट दिया गया है। इन जिलों के मुख्यालय कोष्ठक में दिए गए हैं

1. पूर्वी कामेंग (सेप्पा)
2. पश्चिमी कामेंग (बोमडिला)
3. तवांग सब-डिवीजन (तवांग)
4. अपर सुबांसिरी (डापोरिजो)
5. लोअर सुबांसिरी (जीरो)
6. पूर्वी सियांग (पासीघाट)
7. पश्चिमी सियांग (आलोंग)
8. लोहित (तेजू)
9. दिबांग वैली (अनिनी)
10. तिरप (खोन्सा)
11. चांगलांग सब डिवीजन (चांगलांग)

इस विभाजन के कारण विकास में तेजी आ गई है। लोगों को अब अपने दैनिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दूर नहीं जाना पड़ता है। दूर के इलाकों में सर्किल आफिसर और इ.ए.सी. (ई.ए.सी.) सरकारी काम देखते हैं। अब लोगों का जीवन स्तर भी ऊँचा उठ रहा है। वे आत्मनिर्भर होते जा रहे हैं। लोगों को सभी तरह की सुविधाएँ मिल रही हैं।

दिसम्बर 1986 में भारतीय संसद ने 52 वाँ संविधान संशोधन बिल पारित करके अरुणाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा दे दिया है। भारत सरकार की इस घोषणा से अरुणाचल की जनता में हर्ष की लहर फैल गई है। इससे विकास में गति आएगी। प्रशासन और भी सुचारू रूप से चल सकेगा।

13
आज का अरुणाचल प्रदेश

कल तक जिसे हम नेफा (नार्थ इस्ट फ्रंटियर एजेंसी) कहते थे वही आज का अरुणाचल प्रदेश है। अंग्रेजी शासकों की नीति नकारात्मक थी। वे पहाड़ी इलाकों को राष्ट्र की मुख्य धारा से अलग ही रखना चाहते थे। वर्षों से यहाँ के लोगों ने उपेक्षित जीवन बिताया। आजादी के पहले तक यहाँ के बारे में हमारी जानकारी केवल प्रशासनिक रिपोर्ट, टूर डायरी और कुछ साहसिक लोगों के वर्णनों तक ही सीमित रह गई थी। भारत के अन्य राज्यों के निवासियों के सामने आज तक अरुणाचल का यथार्थ स्वरूप प्रस्तुत नहीं किया जा सका।

अर्सुला ग्रहम बावर ने अपनी पुस्तक में नेफा को अज्ञात क्षेत्र (हिडन लैंड) कहा है। वहाँ के जनजीवन के बारे में लोगों को बहुत कम जानकारी थी। अतः इस तरह की पुस्तकों ने वहाँ के लोगों के बारे में अधिक जानने की जिज्ञासा और भी बढ़ा दी। आजादी के पहले तक कानून की दुनिया से दूर यहाँ के लोग अपना जीवन अलग तरह से ही जीते थे। जीवन की सभी तरह की सुविधाओं का यहाँ अभाव था। विकास की यहाँ छाया भी नहीं पड़ी थी।

उनके एकांत जीवन में सुरक्षा की भावना सबसे प्रबल थी। दुश्मनों का भय सदा बना रहता था। सर्वे पार्टी पर हमला करके नोक्ते, फादर क्रिक की हत्या करके मिशमी और विलियमसन व ग्रेगरसन का सफाया करके आबोर (आदी) बदनाम हो गए। अचिंग मोरी के हत्याकांड ने अरुणाचल के भोलेभाले लोगों का भयानक चित्र उपस्थित कर दिया। हेमेन डोर्फ और डा. वेरियर एलविन ने उनको पास से देखा, उनके साथ रहे और सहानूभूतिपूर्ण दृष्टि से उनके बारे में बहुत कुछ लिखा।

आजादी के बाद भारत सरकार ने अरुणाचल के विकास का काम आरंभ किया। इस बात का सदा ध्यान रखा गया कि उनके विचारों को, पुरातन विश्वासों और जीवन-शैली को ठेस न लग पाए। उनकी परंपराओं, विश्वासों और जीवन शैली को ध्यान में रखकर ही काम आगे बढ़ाया गया। विकास के काम में उनकी प्रतिभा को ध्यान में रखना आवश्यक माना गया। इस विकास में नेहरूजी ने बड़ा योगदान दिया। प्रसिद्ध नेतृत्वशास्त्री। एंथ्रोपोलोजिस्ट

(डाक्टर वेरियर एलविन को शासन के जनजाति-सलाहकार की भूमिका सौंपी गई। अरुणाचल में जनजातियों के विकास में बड़ी सतर्कता से काम लिया गया। लोगों की आशाओं और अपेक्षाओं का सदा ध्यान रखा गया। जमीन और जंगल पर उनके अधिकारों को सुरक्षित माना गया। शोषण को उनकी दुनिया में प्रवेश नहीं करने दिया गया। विकास योजनाओं में उनके परिवेश और आवश्यकताओं को प्राथमिकता दी गई। प्रशासन के कामों में उनके मान्यता प्राप्त लोक प्रचलित नियमों को स्थान दिया गया। इसका उद्देश्य यह था कि उनके विश्वास यथावत् कायम रहें और नया विकास भी संभव हो सके। इस प्रक्रिया का अच्छा प्रभाव पड़ा। उनकी जीवनधारा का संतुलन भी बना रहा और वे अपने विकास में सरकार के भागीदार भी बने रहे।

विकास के केंद्रीकरण के लिए प्रशासन ने एक नया प्रयोग किया। इसे सिंगल लाइन एडमिनिस्ट्रेशन की संज्ञा दी गई। सभी स्तरों पर अलग-अलग विभागों का दायत्वि शासन के प्रतिनिधि को सौंप दिया गया। विभिन्न विभागों में सहयोग की भावना पनपने लगी। अलग-अलग विभागों में काम करने वाले अपने को एक ही परिवार का सदस्य समझने लगे। इससे विकास में गति आई। सीमित साधनों का अधिक-से-अधिक उपयोग करना संभव हो सका।

पंचायत राज्य की स्थापना यहाँ सन् 1967 में हुई। इससे विकास के कामों में जनता के सहयोग की गति बढ़ी। पंचायती राज्य के तीन स्तर कायम किए गए। गाँव के स्तर पर पंचायत काम करती है। अंचल समितियाँ ब्लाक स्तर पर कार्य करती हैं। जिले के स्तर पर "जिला परिषद्" है। सबसे ऊपरी स्तर पर प्रदेश काउन्सिल है। इसकी सलाह सभी को स्वीकार होती है।

जनजातीय संस्कृति की सुरक्षा पर पूरा ध्यान दिया गया है। त्यौहारों को बड़े हर्ष और उल्लास के साथ मानाया जाता है। पंचवर्षीय योजनाओं ने विकास के मार्ग पर अरुणाचल को तेजी से आगे बढ़ा दिया है। आर्थिक विकास का पूरा लाभ यहाँ की जनता को मिला है।

विकास की पहली सीढ़ी यातायात है। आज अरुणाचल में सड़कों की कमी नहीं है। अनिनी को छोड़कर सभी जिला मुख्यालयों तक यातायात की सुविधाएँ हैं। आज उन स्थानों पर भी सड़के हैं, जिनकी पहले कोई कल्पना भी नहीं कर सकता था। पहाड़ों में सड़कें बनाना बहुत ही कठिन और खर्चीला काम है। हिमालय पर सड़कें बनाना एक असंभव काम लगता था। आज यह संभव हो गया है। हमारे अभियंताओं (इंजीनियर्स) की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। आज 600 मीटर की ऊँचाई पर भी अरुणाचल में पक्की और चौड़ी-चौड़ी सड़कें हैं। इन पर दो बड़ी-बड़ी गाड़ियाँ एक साथ गुज़र सकती हैं। बहुत दूर के इलाकों में भी अब सड़कें बन गई हैं। सन् 1947 में केवल 168 किलोमीटर सड़क पर ही जीप चला पाने की सुविधा थी। अब 3,000 किलोमीटर पक्की सड़कें है। इनका विस्तार बड़ी तेजी से होता जा

रहा है। सड़कों से आने-जाने में बहुत सुविधा हो गई है और सामान भी दूर तक आसानी से पहुँच जाता है। सहकारी समितियों, अंचल समितियों और राज्य परिवहन की गाड़ियाँ पूरे अरुणाचल में चलती हैं। आजादी के पहले यह एक सपना था जो अब साकार हो गया है।

तीस वर्ष पहले तक यहाँ केवल झूम खेती होती थी। स्थाई खेती की बिल्कुल जानकारी नहीं थी। खेती में डिबलस्टिक और "दाव" के अलावा और किसी औजार का प्रयोग नहीं होता था। खेती सीमित थी। अनाज का अभाव था। यहाँ के लोग कड़े परिश्रम के बाद भी बहुत कम अनाज उपजा पाते थे।

अब लोग स्थाई खेती का महत्व समझ गए हैं। अरुणाचल के लोगों ने इस कृषि पद्धति को अपना लिया है। लोग अब सरकारी योजनाओं का पूरा लाभ उठा रहे हैं। अब दो लाख एकड़ जमीन में स्थाई खेती होती है। लोगों को अच्छे बीज, रासायनिक खाद और कीटनाशक दवाइयाँ आसानी से मिल जाती हैं। एक लाख टन से भी अधिक अनाज यहाँ स्थाई खेती में पैदा हो रहा है। पंचवर्षीय योजनाओं का पूरा-पूरा लाभ यहाँ की जनता को मिल रहा है। इसके साथ ही बागवानी, पशुपालन, मुर्गीपालन और मछली पालन को भी जनता ने अपना लिया है। सेब उत्पादक प्रदेशों में अरुणाचल प्रदेश का अब एक महत्वपूर्ण स्थान बन गया है।

निचले इलाकों में लोग आत्म-निर्भर हो गए हैं। वे अपनी आवश्यकता से अधिक अनाज भी पैदा कर लेते हैं। सहकारी समितियों के माध्यम से अनाज अरुणाचल के दूसरे भागों में भी पहुँचा दिया जाता है। धीरे-धीरे अरुणाचल आत्म-निर्भरता की ओर बढ़ता जा रहा है। पहले पूरे अरुणाचल में विमानों से राशन गिराया जाता था। अब केवल दूर-दराज के छोटे-छोटे इलाकों में ही यह व्यवस्था रह गई है। सारा यातायात सड़कों के द्वारा ही होता है।

सहकारिता के क्षेत्र में लोगों की विशेष रुचि है। गाँव के जीवन में सहकारिता कोई नई बात नहीं है। सहकारी समितियाँ यहाँ बड़ी सफल रही हैं। छोटी-बड़ी कई सहकारी समितियाँ अरुणाचल में काम कर रही हैं। यहाँ स्कूलों में भी सहकारी समितियाँ चलती हैं। लोग उनके शेयर खरीदते हैं और उनके विकास में पूरा सहयोग देते हैं।

अरुणाचल के लोग सुन्दर वस्त्र बुनते हैं। कामेंग के मोन्पा डिजाइनदार गलीचे बुनते हैं। ये लकड़ी के मुखौटे भी बनाते हैं। लकड़ी की अन्य सुन्दर चीजें भी यहाँ बनती हैं। ये बहुत ही अच्छे कारीगर होते हैं। आपातानी, आदी और मिशमी स्त्रियाँ बुनाई का सुन्दर काम करती हैं।

नौक्ते और वांचू बेंत की सुन्दर वस्तुएँ बनाते हैं। लकड़ी पर कलाकृतियाँ बनाने में वे बहुत दक्ष होते हैं। अरुणाचल की अन्य दूसरी जातियों में भी कई तरह की कलात्मक वस्तुएँ बनती हैं। शासन की ओर से इनकी पुरातन कलाओं को बढ़ावा दिया जा रहा है। इनके डिजाइनदार कपड़े स्कूल-यूनिफार्म की जगह काम में आते हैं। ये देखने में बड़े सुन्दर लगते हैं।

स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई है। पहले लोग अपने ही विश्वासों के आधार पर अपनी चिकित्सा किया करते थे। प्रत्येक रोग के लिए अलग-अलग तरह की बलि और पूजाएँ प्रचलित थीं। प्रशासन ने इस बात की पूरी सावधानी रखी है कि आधुनिक दवाखानों से उनके विश्वासों को ठेस न लगे। स्वास्थ्य सेवा का काम बहुत ही विवेक के साथ धीरे-धीरे दूर-दूर तक पहुँचाया जा रहा है। शिक्षा के साथ लोगों के विचार भी बदलने लगे हैं। डॉक्टरी इलाज और ओझा की पूजा साथ-साथ चलती रहती है। अब लोग डाक्टरों पर विश्वास करने लगे हैं।

सन् 1947 में पूरे अरुणाचल में इने-गिने अस्पताल थे। अब इनकी संख्या 150 तक पहुँच गई है। दूर-दराज के इलाकों में भी अब इलाज की सभी सुविधाएँ मिल जाती हैं। अब तो कई अस्पतालों में एक्सरे की सुविधाएँ भी उपलब्ध हो गई हैं।

अब दो हजार की जनसंख्या पर एक डॉक्टर और तीन हजार की जनसंख्या पर एक नर्स की व्यवस्था की गई है। अधिक डॉक्टरों और नर्सों की भर्ती जारी है। प्रतिवर्ष बीमारों की भर्ती के लिए अस्पतालों में बिस्तरों की संख्या बढ़ रही है। अभी 450 की जनसंख्या पर एक बिस्तर की व्यवस्था है।

ईटानगर में सरकारी अस्पताल के अलावा रामकृष्ण मिशन का भी एक बड़ा अस्पताल है। सरकार अनुदान के रूप में इसका खर्च देती है। इसमें सभी तरह के इलाज की व्यवस्था है। इस अस्पताल में अभी लगभग 200 मरीज भर्ती करने की व्यवस्था है।

सन् 1947 में यहाँ केवल तीन स्कूल और तीस विद्यार्थी थे। अब प्रत्येक जिले में हायर सैकेण्डरी स्कूल खुल गए हैं। हायर सैकेण्डरी तक की शिक्षा की सुविधा सभी विद्यार्थियों को मिल गई है। सभी हायर सैकेण्डरी, सैकेण्डरी और मिडिल स्कूलों के साथ छात्रावासों की भी सुविधा है। लड़कियों के छात्रावास अलग होते हैं। छात्रावासों में मुफ्त भोजन और रहने की निःशुल्क सुविधा है। अब अरुणाचल में बारह सौ स्कूल हैं। दूर-दराज के स्थानों में इन्टर-विलेज स्कूल भी हैं। इन प्राइमरी स्कूलों में छात्रावासों की भी सुविधा होती है।

सरकारी स्कूलों के अलावा यहाँ रामकृष्ण मिशन के तीन सैकेण्डरी स्कूल भी हैं। इनमें दो लड़कों के लिए और एक लड़कियों के लिए है। दो केन्द्रीय विद्यालय भी अरुणाचल में चल रहे हैं। सरकारी स्कूलों में लड़के-लड़कियाँ एक साथ पढ़ते हैं। पुस्तकें, स्टेशनरी और यूनिफार्म सभी कुछ सरकार की ओर से मिलते हैं। "विवेकानन्द केन्द्र" नामक संस्था भी अरुणाचल में कुछ स्कूल चला रही है। ईटानगर में "दोनी-पोलो पब्लिक स्कूल" भी है। सैनिक स्कूल, राष्ट्रीय इंडियन मिलेट्री अकादमी, वनस्थली-विद्यापीठ आदि स्थानों पर भी अरुणाचल के विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करने जाते हैं। "सील" (स्टुडेन्ट्स एक्सीपीरियंस इन इन्टर स्टेट लिविंग) कार्यक्रम के अन्तर्गत कई विद्यार्थी बम्बई और दूसरे शहरों में वहाँ के परिवारों के साथ रहकर पढ़ रहे हैं।



चित्र 22: जवाहर लाल नेहरू कालेज, पासीघाट



चित्र 23: अरुणाचल में कॉफी की पैदावार

अरुणाचल में दो कॉलेज भी हैं। पासीघाट कॉलेज पुराना है। यहाँ विज्ञान की शिक्षा की सुविधा उपलब्ध है। अरुणाचल शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर आगे बढ़ रहा है। अरुणाचल विश्वविद्यालय की स्थापना हो चुकी है। ईटानगर में ही "इन्स्टीट्यूट आफ साइंस एन्ड टेक्नालाजी" नामक तकनीकी शिक्षा संस्था की स्थापना भी हो गई है। हायर सैकेण्डरी परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद योग्यता के आधार पर अच्छे विद्यार्थियों को इंजीनियरिंग, मेडीकल और कृषि-कॉलेजों में प्रतिवर्ष भेजा जाता है। आठवीं कक्षा तक पढ़े विद्यार्थियों के लिए रोइंग में एक टेक्नीकल स्कूल भी है। यहाँ लड़के अपनी रूचि के अनुसार तकनीकी व्यवसाय सीखते हैं।

अब अरुणाचल के लोग ही डॉक्टर, इंजीनियर, आफिसर और प्रोफेसर आदि बन गए हैं। शिक्षा के प्रचार ने अरुणाचल के विकास को और तेज कर दिया है।

तिरप के खर्सियांग नामक स्थान पर पैट्रोलियम के भंडार मिले हैं। तेल निकालने का काम आरंभ हो गया है। लोहित में तेजू नामक स्थान पर सीमेंट बनाने का कारखाना खुल गया है।

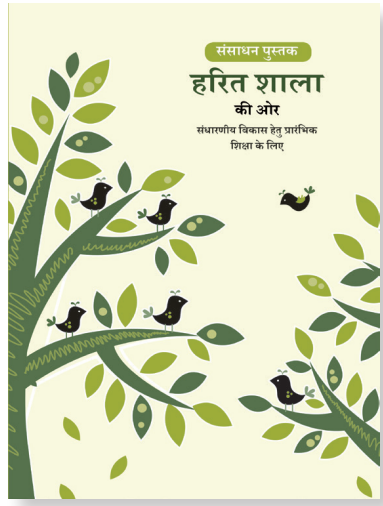
अरुणाचल पहाड़ी प्रदेश है। यहाँ पानी की कमी नहीं है। जल-बिजली की योजनाओं को यहाँ प्राथमिकता दी गई है। अब यहाँ के कई गाँवों में बिजली भी पहुँच गई है।

अरुणाचल में अपार वन-संपदा है। साठ प्रतिशत से अधिक भूमि जंगल है। वनों से अरुणाचल को बहुत आर्थिक लाभ होता है। अब तिरप और लोहित में वनों पर आधारित उद्योग भी लग गए हैं। वनों की निर्मम कटाई पर यहाँ रोक लगाई जा रही है। आपातानी और कुछ अन्य जन-जातियों में पेड़ लगाने की प्रथा पुरानी है। यहाँ प्रतिवर्ष लाखों नए पेड़ लगाए जा रहे हैं। होलोक का पेड़ सबसे अच्छा माना जाता है। बड़ी इलायची, दालचीनी और रूद्राक्ष यहाँ के जंगलों में बड़ी मात्रा में मिलते हैं। अरुणाचल वन-निगम—काली मिर्च, रबर, बड़ी इलायची, चाय और काफी की पैदावार बढ़ा रहा है। अरुणाचल में काफी का भविष्य बड़ा उज्जवल है।

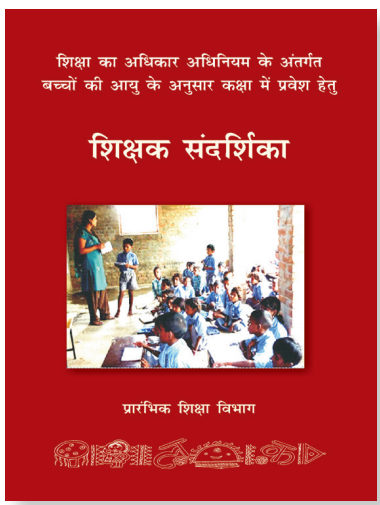
कई वर्षों तक शिलांग ही अरुणाचल का मुख्यालय रहा। अब ईटानगर अरुणाचल की राजधानी है। ईटानगर दर्शनीय स्थल है। यहाँ के सचिवालय, एम.एल.ए. होस्टल, राजभवन, दोनीपोलों स्कूल, डिग्री कॉलेज और रामकृष्ण मिशन अस्पताल बहुत ही सुंदर हैं। इस राजधानी का विकास बड़ी तेजी से हो रहा है। अरुणाचल के सभी भागों से ईटानगर पहुँचने की सुविधा है। रात को बिजली की रोशनी में चमकती हुई यह राजधानी बहुत ही सुंदर लगती है और देखने वालों को मुग्ध कर लेती है। अब तो अरुणाचल को पूर्ण राज्य का दर्जा भी दे दिया गया है। इससे प्रगति के और अनेक द्वार खुल जाएँगे।



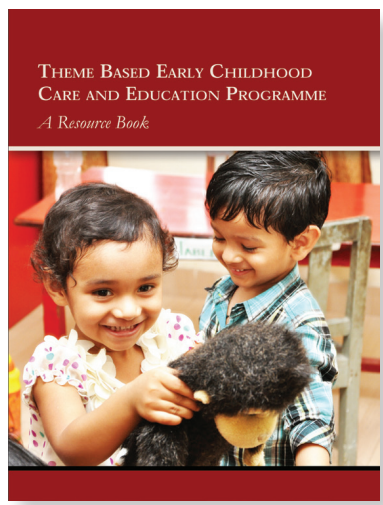
दर्पण
₹140.00 / पृष्ठ 104
कोड — 13151
ISBN — 978-93-5007-830-3



हरित शाला की ओर
₹115.00 / पृष्ठ 163
कोड — 13150
ISBN — 978-93-5007-829-7



शिक्षक संदर्शिका
₹180.00 / पृष्ठ 110
कोड — 13133
ISBN — 978-93-5007-756-6



Theme Based Early Childhood Care and Education Programme
₹400.00 / pp.277
Code — 13130
ISBN — 978-93-5007-348-3

अधिक जानकारी के लिए कृपया www.ncert.nic.in देखिए अथवा कॉपीराइट पृष्ठ पर दिए गए पतों पर व्यापार प्रबंधक से संपर्क करें।



1960

विद्ययाऽमृतमश्नुते

एन सी ई आर टी
NCERT

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

ISBN 978-93-5292-168-3